भरतेश वैभव

एक श्रावक की साधना

www.gurukahanmuseum.org

ૐ

સહજ ચિદાનંદ.

www.gurukahanmuseum.org

Exhibit

GURU KAHAN ART MUSEUM

www.gurukahanmuseum.org

Sponsor

Shree Kundkund - Kahan Parmarthik Trust
Mumbai

Organiser

PAINTERNET
ART EXCHANGE

www.painternet.com

www.gurukahanmuseum.org

First Published 2024
By Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai

All rights reserved only with:
Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust
302, Krishna Kunj, V. L. Mehta Marg,
Vile Parle (West), Mumbai - 400056.INDIA.
Tel. No.: +91 22 2613 0820
Telefax: +91 22 2610 4912
Email: info@vitragvani.com
Web: www.vitragvani.com

No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system, or transmitted, in any form or by means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the publishers.

Without the prior permission or the publishers.

Conceptualized by **Nikhil Mehta & Rahul Jain**
Design by **Forestbell Design Solutions LLP**
Photography by **Mr. Vipul Patel**
Edited and visualized by **Rahul Jain**

ISBN No.: 978-12-34567-89-7
Price: INR 500/- & US 10$

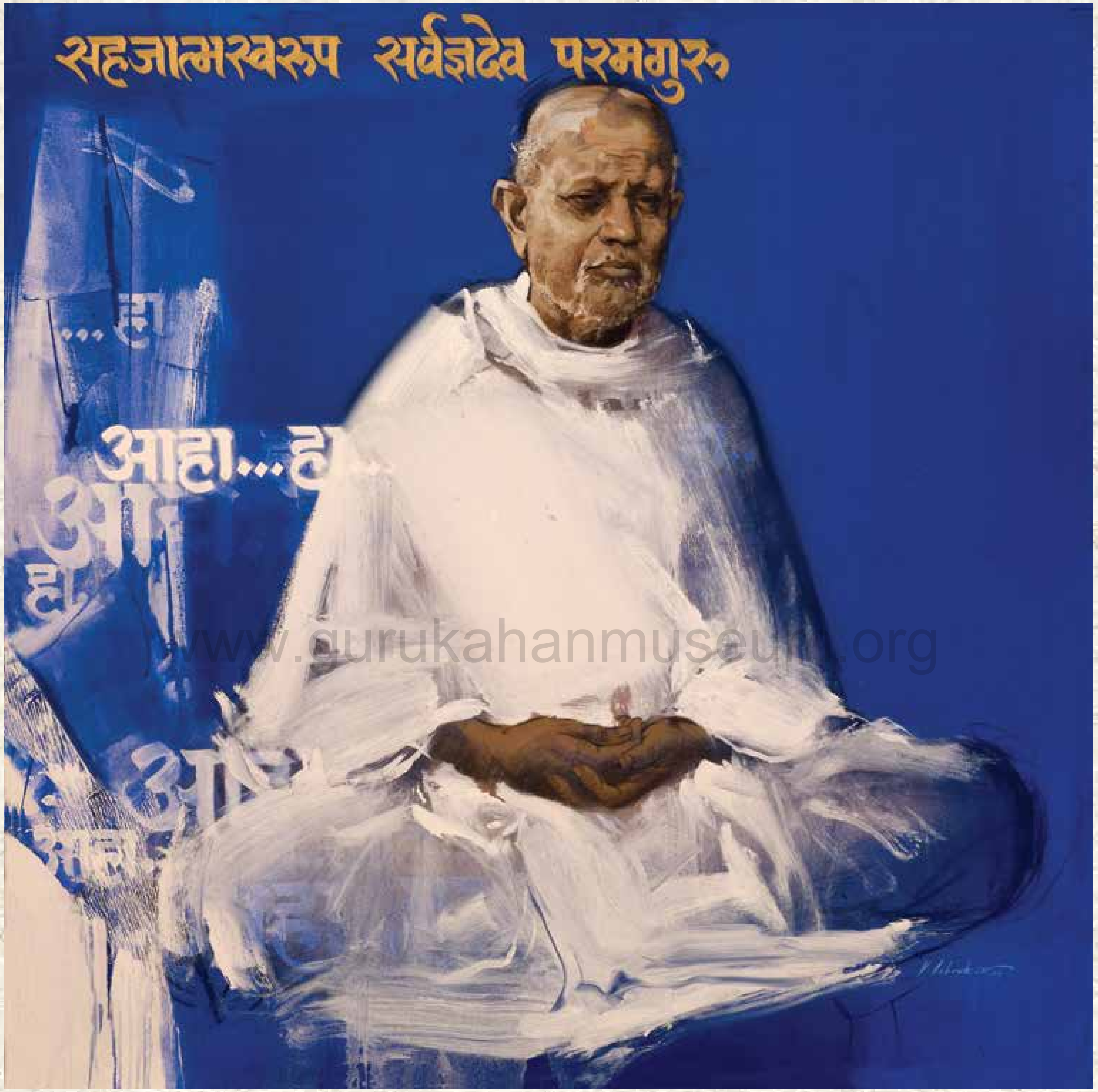

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

भरतेश वैभव (एक श्रावक की साधना)

:प्रस्तावना:

भव-भव में ही भटकते, बीते काल अनन्त।
मन ही मन सोचें भरत, कैसे हो भव अन्त।।

प्रस्तुत है महाकवि रत्नाकर वर्णी जी द्वारा रचितः भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में ईक्ष्वाकु वंश में जन्में, अन्तिम कुलकर मानवश्रेष्ठ महाराजा नाभिराय के प्रपौत्र एवं वर्तमानकालीन प्रथम तीर्थंकर भगवान श्री आदिनाथ के ज्येष्ठ पुत्र, श्रावकश्रेष्ठ, प्रथम षटखण्डाधिपति - चक्रवर्ती सम्राट भरत का वैभव 'भरतेश वैभव'।

चक्रवर्ती सम्राट भरत, जो जैनशासन के गौरव हैं, जिनके ही नाम पर आज इस देश का नाम भारत जाना जाता है, जिन्होंने सम्पूर्ण खण्ड-खण्ड पृथ्वी को एककर उसे अखण्ड साम्राज्य में परिवर्तित किया और भारत की पवित्र धरा पर धर्म और न्याय की स्थापना की। वे बाह्य जगत से उदासीन, तन-धन भोगों से विरक्त और जगतख्याति को त्याग आत्मख्याति के मार्ग पर उन्मुख थे।

www.gurukahanmuseum.org

भरत चक्रवर्ती के जीवन का प्रत्येक अंग पुरुषार्थ प्रेमी भव्य आत्माओं को प्रेरणादायी है, उनका ज्ञान, विशुद्धि, धर्म तत्परता, वात्सल्य, दृढता एवं अन्य सभी गुण आदरणीय हैं, अनुकरणीय हैं।

ऐसे महान सम्राट श्री भरतेश की गौरव गाथा को इस आधुनिक युग में अद्भुत चित्रकला के माध्यम से प्रस्तुत करने का कार्य 'श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई' एवं 'गुरु कहान कला संग्रहालय, सोनगढ' द्वारा किया गया है। इस महान कार्य में अपनी चित्रकौशलता से जिन्होंने सबको मनोनीत किया, ऐसे देश-विदेश में ख्यातिप्राप्त चित्रकार श्री विजय आचरेकर जी के भी हम सदा आभारी हैं, जिनके अथक परिश्रम से यह कार्य इतने सुन्दर और व्यवस्थित रूप से सभी के समक्ष प्रस्तुत हो पाया है।

श्री आदिनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, सोनगढ २०२४ के इस पावन प्रसंग पर हम भी भरत चक्रवर्ती के जीवन चरित्र से आदर्श गुणों को ग्रहण करें और उनके वैराग्य एवं धर्मपरायण स्वभाव को अपने जीवन में धारें, ऐसी मंगल भावना।

ट्रस्टीगण,

– श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई

www.gurukahanmuseum.org

ह्रीं - भगवान आदिनाथ से भगवान महावीरस्वामी पर्यंत वर्तमान चौबीस तीर्थंकरों की परम्परा का प्रतीक

राजा ऋषभदेव द्वारा षट् कर्म उपदेश

36"Wx48"H | Oil on Canvas

कालचक्र के अनुसार अब भोगभूमि की दिव्यता क्षीण होने लगी थी, कल्पवृक्षों के फल प्रदान करने की सामर्थ्य घटने लगी और प्रजा, जो ‘वृक्षों से ही सम्पूर्ण जीवन है’ ऐसा मानकर उन्ही पर आश्रित थी, अब हताश हो गयी। अतः जिसप्रकार एक बालक निराश होने पर अपनी माता की शरण खोजता है, उसी प्रकार व्याकुल प्रजा भी जीवित रहने की इच्छा से पितृसम नृपश्रेष्ठ महाराजा नाभिराय की शरण में पहुँची और उपाय की विनती करने लगी। महाराजा नाभिराय प्रज्ञावान एवं दूरदर्शी राजा थे, उन्होंने प्रजा को सम्बोधित करते हुए कहा कि ‘आप सभी की निराशा का कारण यथार्थ है अतः इस समस्या का उपाय उन्हीं से लिया जाना चाहिये जो धर्मक्षेत्र और कर्मक्षेत्र दोनों में ही सर्वश्रेष्ठ हैं अर्थात इस काल के प्रथम तीर्थंकर होनेवाले राजा ऋषभदेव ही इस समस्या से निकलने का उपाय दे सकते हैं।’ अतः राजा नाभिराय से आज्ञा पाकर सभी प्रजाजन राजा ऋषभदेव के पास पहुँचे और उनसे विनती की - ‘हे देव! हम शरणहीन प्रजा को इस परिवर्तनशील युग में जीवित रहने का मार्ग बताइये! हमारी रक्षा कीजिये। हे विभो! आप इस युग के आदि कर्ता हैं और कल्पवृक्ष के समान उन्नत हैं, आपके आश्रित होते हुए हमें भय किस प्रकार हो सकता है।’ इसप्रकार प्रजाजनों के दीन वचन सुनकर राजा ऋषभदेव विचार करने लगे कि एक राजा का कर्तव्य है कि अपनी प्रजा के सुख-दुख में वह भागी बने, उनके दुःखों और कष्टों का निवारण करे और यदि मैं इनकी सहायता नही करूँगा तो मेरे राजा होने का क्या लाभ?, ये मेरे ही आश्रय से तो रहते हैं, अतः जिसप्रकार विदेह क्षेत्र में षट् कर्म की व्यवस्था है उसीप्रकार यहाँ भी कर्मभूमि के प्रारंभ होने से षटकर्म के ज्ञान की आवश्यकता है। ऐसा जानकर पंद्रहवे कुलकर नामधारी राजा ऋषभदेव ने प्रजाजनों को शस्त्रविद्या अर्थात असि, लेखन आजीविका अर्थात मषि, जमीन जोतना इत्यादि अर्थात कृषि, शास्त्र आदि द्वारा आजीविका अर्थात विद्या, व्यापारादिक द्वारा आजीविका अर्थात वाणिज्य और हस्त कुशलता द्वारा आजीविका अर्थात शिल्प इन षटकर्मों द्वारा आजीविका का अवबोध कराया। साथ ही राजा ऋषभदेव ने अपनी दोनों कन्याओं, ब्राह्मी को शब्द विद्या व सुन्दरी को अंक विद्या का ज्ञान देकर समस्त जगत को कृतार्थ किया और इसप्रकार षटकर्मों का ज्ञान पाकर प्रजाजन आजीविका के भय से मुक्त होकर अति आनन्दित हुई और उन्होंने राजा ऋषभदेव की जय-जयकार से सम्पूर्ण आकाश को ही गूंजायमान कर दिया।

www.gurukahanimuseum.org

ऋषभदेव का वैराग्य

36"Wx48"H | Oil on Canvas

प्रशस्त लक्ष्मी के स्वामी, प्रजाजनों के सर्वप्रिय, सुरपति द्वारा वन्दनीय सम्राट ऋषभदेव न्यायपूर्वक अयोध्या सहित सम्पूर्ण देश पर राज्याभिषेक के पश्चात ६३ लाख पूर्व तक शासन करते रहे। उनका तेज इतना था कि मानो सूर्य-चन्द्रमा भी उनके समक्ष अपनी आभा के प्रसारण में लज्जित हो जाते हों। एक दिन सैकडों राजाओं से घिरे सम्राट सभामण्डप में बैठे थे, भावी तीर्थंकर की सेवा हेतु सौधर्म इन्द्र स्वयं समस्त देवलोक के भोग-सामग्री एवं मनोरंजन साधन लेकर पधारे। भगवान की आराधना की इच्छा से नर्तकों ने नृत्य करना प्रारंभ किया और इसी बीच एक अत्यन्त रूपवान नर्तकी, जिसका नाम नीलांजना था, उसने प्रवेश किया। अपनी नृत्य कला और मनोहारी रूप से उसने सभी का मन मोह लिया। परन्तु भवितव्यता को कुछ और ही स्वीकार था, नृत्य करते-करते नीलांजना का देहविलय हो गया! किसी को इस बात का भान भी नही हुआ। मनोरंजन रसभंग होने के भय से सौधर्म इन्द्र ने तत्क्षण ही एक दूसरी नर्तकी उसी नृत्य मुद्रा में वहाँ उपस्थित कर दी। सब कुछ वैसा ही था परन्तु अत्यन्त विवेकी एवं जग से विरक्त राजा ऋषभदेव ने यह सब जान लिया था, उनसे कुछ छुपा नही था। नीलांजना की मृत्यु देख उन्हें अंतर में ऐसा विचार आया कि अहो! यह जगत कितना क्षणभंगुर एवं स्वार्थी है, धिक्कार है इस मिथ्या जगत के मिथ्या सुखों को। किसी की मृत्यु पर कोई शोक नही, सभी अपने इन्द्रियगत मनोरंजन के आधीन बस पिसे जा रहे हैं। अहो! यह तो क्रूरता है। यह धन, महल, भोग, राज्य सब ठगों का ही समूह है, आत्मस्वभाव का पतन कराने वाले हैं। यह सांसारिक सम्पदा ना तो आज तक किसी की हुई है और ना ही होगी, असंख्य चक्रवर्ती, राजा इसे जीत चुके हैं और गँवा चुके हैं, परन्तु मेरा आत्मवैभव अविनश्वर है, ये ऐसी सम्पदा है जो कभी छूटेगी नहीः इस प्रकार सच्ची समझ पूर्वक जिनकी आत्मा संसार-शरीर व भोगों से विरक्त हो गयी है, ऐसे भगवान ऋषभदेव पूर्ण विरागी होकर मुक्ति के लिये उद्यम करने लगे। काललब्धि जान उन्होंने सम्पूर्ण राजपाट त्याग मुक्तिमार्ग पर अग्रसर होने हेतु वन की ओर विहार किया।

www.gurukahanimuseum.org

ऋषभदेव की मुनिदीक्षा और भरत का राज्याभिषेक

36"Wx48"H | Oil on Canvas

नीलांजना की मृत्यु देख राजा ऋषभदेव का हृदय वैराग्य से द्रवित हो गया और वे बारह भावनाओं का चिन्तवन करने लगे। इन्द्र ने अपने अवधिज्ञान से भगवान के वैराग्य के विषय में जान लिया। उनके वैराग्य की अनुमोदना हेतु लौकान्तिक देव भी पधारे और उनकी विशुद्ध परिणामों की अनुमोदना कर पुनः स्वर्ग की ओर चले गये। तत्पश्चात राजा ऋषभदेव का तपकल्याणक हेतु क्षीरसागर के जल से अभिषेक किया गया और उन्हे वन जाने हेतु सज्ज किया गया। अभिषेक उपरांत ऋषभदेव ने समस्त राजपाट अपने सभी पुत्रों में विभाजित किया एवं ज्येष्ठ पुत्र भरत का राजपद हेतु राज्याभिषेक किया और बाहुबली को राज्य का युवराज घोषित किया। भरत और बाहुबली जैसे सुयोग्य राजाओं को पाकर धरती और प्रजा दोनों धन्य हुई। जो सौम्य और न्यायपूर्ण छवि वे राजा ऋषभदेव में पाया करते थे ठीक वैसी ही छवि उन्हें भरत और बाहुबली में भी देखने को मिल रही थी, सम्पूर्ण प्रजा के मध्य यह हर्ष का प्रसंग था। अब वैराग्य भावना के चिन्तवन पूर्वक, परिजनों की मोह छोडकर, समस्त अंतरंग - बहिरंग परिग्रह अर्थात घर-परिवार, राग-द्वेष, राज सिंहासन इत्यादिक को छोडने को उन्मुख होते हुए भगवान ऋषभदेव अपने समस्त इन्द्रगण, राजाओं और परिजनों के साथ वन की ओर विहार करते हुए सिद्धार्थक वन में पहुँचें। वहाँ समस्त परिग्रह का त्याग कर उन्होंने चार हजार राजाओं के साथ मुनिदीक्षा धारण की। दीक्षा का वह दृश्य भव्यों को हर्ष में, रागियों को शोक में और विरागियों को प्रेरणा में निमित्त बना। देव नगाडों की ध्वनि से तीनलोक गूंजायमान हो गया और सब तरफ भगवान के तपकल्याणक की अनुमोदना हुई। आकाश से पुष्पवर्षा और जय-जय के नाद की ध्वनि से सभी का हृदय वैराग्य की ओर उन्मुख हुआ।

www.gurukahanmuseum.org

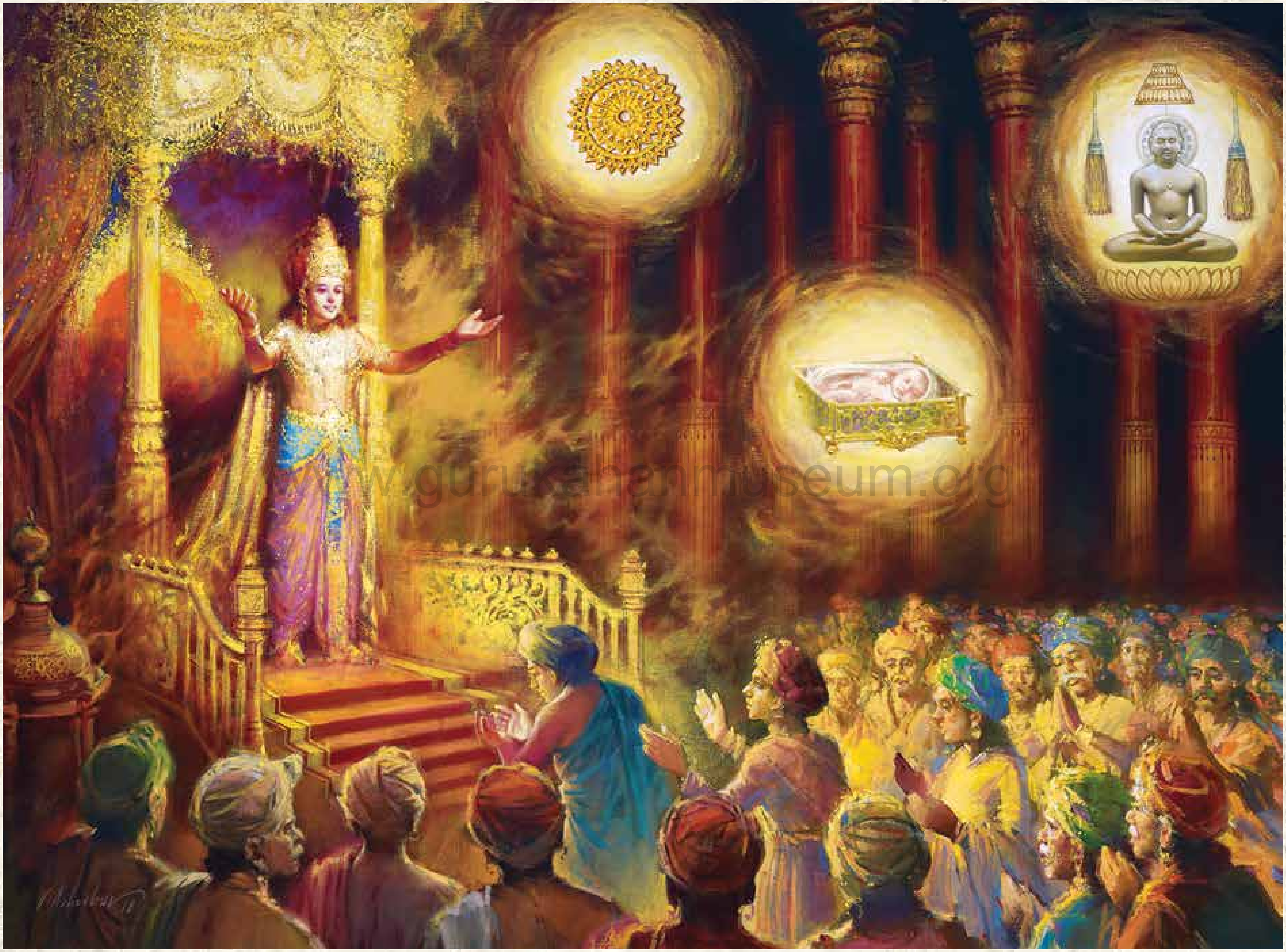

त्रिरत्नों की प्राप्ति

36"Wx48"H | Oil on Canvas

पिता के दीक्षा लेने के पश्चात राजा भरत ने मानो सम्पूर्ण पृथ्वी को ही अपना परिवार मान लिया हो, इसप्रकार शासन किया। प्रजाजन भी परस्पर चर्चा-वार्ता किया करते कि सम्राट भरत तो वास्तव में अत्यन्त पराक्रमी और न्यायवान राजा हैं, कोई आशंका भी करते कि सम्राट पराक्रमी कैसे हैं? क्योंकि वे ना तो युद्ध पर जाते हैं, ना उनके विजय के समाचार हमने आज तक सुने हैं! तो ज्ञानी प्रजाजन ही समाधान देती कि भाई! पराक्रमी वो नहीं जो युद्ध करे और जनहत्या में निमित्त हो, सच्चा पराक्रमी तो वो है जिसके समक्ष स्वयं ही सारी प्रजा और मित्र-शत्रु वंदन करे। इसीलिये हमारे सम्राट सही अर्थों में पराक्रमी हैं। जिनके आश्रय से समस्त पृथ्वी और प्रजा सुखी रहे, ऐसे हैं हमारे सम्राट भरत। राजा भरत की कीर्ति दिग-दिगान्तरों में फैलती जा रही थी और दूसरी ओर मुनिराज ऋषभदेव सहस्त्र वर्ष की कठिन तपस्या के बाद केवलज्ञान प्राप्ति की ओर उन्मुख थे और एक दिन जब सम्राट अपनी राजसभा में बैठे मन्त्रणा कर रहे थे कि तभी एक राजदूत राजसभा में भगवान आदिनाथ की जय-जयकार करता हुआ प्रवेश करता है और सम्राट भरत को 'मुनिराज आदिनाथ को शकट नामक उद्यान में केवलज्ञान की प्राप्ति हो गयी है।' ऐसा संदेश देता है। यह समाचार सुनकर सम्राट अपने हृदय के हर्ष को समेट ना पाये, उन्होंने अपने सिंहासन से उठकर चार कदम आगे बढकर भगवान को नमस्कार किया। वे गदगद होकर अपनी रत्नमालायें उस दूत को देने ही लगे थे कि तभी दूसरा राजदूत सभा में प्रवेश करता है और समाचार देता है कि 'आयुधशाला में सम्राट भरत के यश और कीर्ति को सम्पूर्ण भू-मण्डल में पहुँचाने वाला और समस्त पृथ्वी को जीतने वाला सुदर्शन चक्र प्रगट हुआ है।' समस्त राजसभा यह समाचार सुनकर आश्चर्य और गौरव से भर उठी और चक्रवर्ती सम्राट की जय-जयकार करने लगी। सम्राट के हर्ष का पार ना रहा, वे चक्रवर्ती पद के गौरव और उसके दायित्व के भार को अनुभव कर पा रहे थे, कि तभी बधाइयों के उस शोर में एक और शुभ समाचार लेकर दूत आया और बोला कि 'हे महाराज! अन्तःपुर में आपको पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई है।' एक साथ तीन-तीन शुभ समाचार सुनकर सारी अयोध्या धन्य हुई, भरत ने भी अपार हर्षित होकर प्रजा में किमिच्छिक दान दिया और इस प्रकार सारी वसुधा आने वाले उत्तम भविष्य की आशाओं में मग्न हो गयी।

www.gurukahanimuseum.org

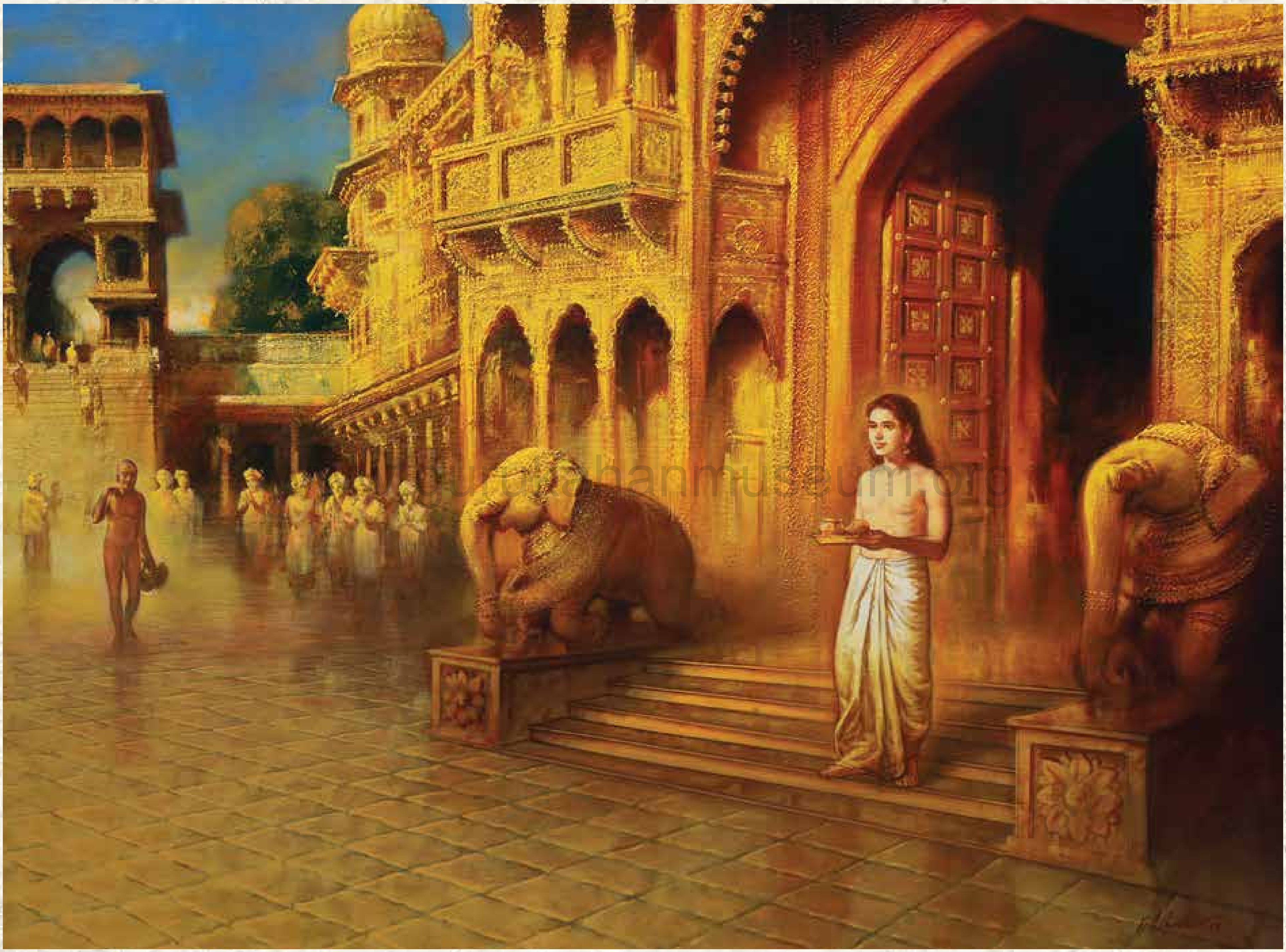

मुनिराज को आहार दान

36"Wx48"H | Oil on Canvas

चक्रवर्ती भरत जितने योग्य शासक थे, उतने ही योग्य एक श्रावक भी। अन्तर्मन इतना दृढ और संकल्पित कि अपने जीवनकाल में षट आवश्यकों के उल्लंघन का भाव भी नही। उनका शासन प्रजा के साथ-साथ धर्म पालन एवं प्रचार में भी अत्यन्त अनुकूल था। राजा तो वे प्रजा के लिये थे, परन्तु स्वयं की दृष्टि में तो वे मात्र साधक थे, सत्य ही है क्योंकि जिन्हें निज चैतन्य निधि मिल जाती है, वे जड निधि से प्रभावित नहीं होते। सम्राट भरत जब भोजन हेतु बैठते, तो उन्हें पकवान का नही, अंतर में विद्यमान शुद्ध परिणति का ही रस आता। वे प्रतिदिन स्व-भोजन से पूर्व अपने समस्त आभूषण छोड शुद्ध धवल वस्त्र पहनकर महल के बाहर हाथों में जल का कलश लिये आहार दान हेतु उत्तम पात्र की आशा में खडे होते थे। निस्पृहता इतनी कि भरत अपने सभी सैनिकों, रानियों एवं परिजनों से कह देते थे कि अभी मुझे कोई नमस्कार ना करे, ना ही मेरी सेवा हेतु आगे-पीछे घूमे, अभी मैं राजा नहीं मात्र एक श्रावक हूँ। वे प्रतिज्ञाबद्ध रहते कि जबतक मैं किन्ही मुनिराज या उत्तम पात्र को आहार नही करा देता, स्वयं आहार ग्रहण नही करूँगा। उनके पुण्य का प्रताप इतना कि प्रतिदिन उन्हें उत्तम पात्र के दर्शन होते और वे उन्हें आहार कराकर स्वयं आहार ग्रहण करते थे।

www.gurukahanimuseum.org

भोजनखण्ड में भरत

36"Wx48"H | Oil on Canvas

जिन्होंने घर से पहले घर के मोह को ही त्याग दिया ऐसे भरत जब अपने लिये बनाये हुए आहार में से मुनिराजों को आहार कराकर वापिस लौटते तो उनके शरीर का तेज सबको अपनी आभा से लज्जित करता था, वे अत्यन्त रूपवान थे परन्तु मात्र शरीर से नही, अन्तर के गुणों से भी। वे बलशाली थे परन्तु मात्र देह से नही, आत्मबल से भी। वे बुद्धिमान थे परन्तु मात्र बाह्य ज्ञान से ही नही अपितु आत्मज्ञान से भी। ऐसे भरत जब भोजनखण्ड में अपनी रानियों के साथ भोजन करने बैठते तब मानो ऐसा लगता कि सूर्य अपनी समस्त किरणों के साथ प्रकाशित हो रहा हो। वे रानियाँ अत्यन्त रूपवान और रति के समान सुशोभित हो रही थी, उनके समक्ष स्वर्ग की देवियाँ भी दासी के समान प्रतीत होती थी। ऐसी स्त्रियों के स्वामी सम्राट भरत अपनी सह-धर्मिणियों के साथ प्रतिदिन योग्य समय में शुद्ध जल-भोजन ग्रहण करते थे। भरत प्रेमपूर्वक सबको निमंत्रण देते हुए पुकारते और सभी रानियाँ अपना स्थान ग्रहण कर स्वामी के भोजन करने की प्रतीक्षा करती, जब सम्राट भोजन प्रारंभ करते तत्पश्चात सभी रानियाँ भी भोजन प्रारंभ करती और यह दृश्य देख सभी जन अत्यंत हर्षित हुआ करते। सच में! ज्ञानियों की प्रवृत्ति जग में रहते हुए भी जग से अत्यन्त भिन्न ही होती है।

www.gurukahanimuseum.org

रानियों द्वारा भरत की प्रशंसा

36"Wx48"H | Oil on Canvas

निरभिमानी सम्राट भरत अपनी अयोध्या में सुखपूर्वक राज्य किया करते थे। उनकी सभी रानियाँ अपने स्वामी की प्रशंसा करते थकती नही थी, उनके लिये तो अपने स्वामी की प्रशंसा हेतु ऐसे शब्द ही नही बने, जिनमें भरत के सभी गुण समाहित हो सके। वे महलों में ऐसे विचरण करती जैसे पुष्पों से सुगंधित सरोवर में हंसों का समूह। एक दिन महल में ही रहने वाले एक शुक अर्थात तोते के साथ सम्राट भरत को प्रिय एवं अत्यन्त रूपवान रानी कुसुमा जी की विनोदपूर्ण चर्चा हुई कि क्या सच में सम्राट भरत के समान कोई अन्य रूपवान नहीं है? वहाँ कुसुमाजी रानी ने पति-मोह में सम्राट भरत के रूप और सौन्दर्य के गीत गाने प्रारंभ किये। वे कहती हैं, हे शुकराज! धैर्यपूर्वक सुनो, हमारे सम्राट के केश अत्यन्त सुगंधित एवं मनोहारी हैं, कंधों तक लहराने वाले उनके केश ऐसे सुशोभित होते है कि जैसे हिमवन पर्वत से बहती हुई गंगा। ऐसे असाधारण केशों सहित हमारे स्वामी को कोई किसी भी दिशा से देखे, वह आनन्द ही पायेगा। उनके विशाल ललाट पर शोभता हुआ चन्दन का तिलक उनके पराक्रम और साहस का अनुभव कराता है और हो भी क्यों ना? वे षटखण्ड को जीतने वाले युग के प्रथम चक्रवर्ती जो हैं। उनकी भौंहें पर्वतों के समान उन्नत हैं, नेत्र युगल सरोवर के समान शान्त हैं, दृष्टि बिजली के समान गर्जनायुक्त है, गाल दर्पण के समान स्वच्छ हैं, कानों में लटके कुण्डल पुष्पों पर मंडरा रहे भंवरों के समान और अधर खिले हुए कमल की पंखुडियों के समान आकर्षक हैं। उनकी वाणी ऐसी मधुर है, मानो स्वयं सरस्वती। उनकी भुजायें इतनी बलशाली हैं कि वे चाहें तो सम्पूर्ण पर्वत को जड से उखाड कर कोसों दूर फेंक दें, वे भुजायें सामान्य नही अपितु शत्रुओं को तो काल स्वरूप और मित्रों को आलिंगन स्वरूप प्रतीत होती हैं। शुकराज! जब वे समस्त रत्नमयी सुवर्ण आभूषण धारणकर राजमहल में प्रवेश करते हैं तब लगता है कि मानो स्वयं सूर्य ही धरती पर अपनी आभा फैलाने आकाश से आ गया हो। यही नही, तुम्हारे कामदेव को तो पांच बाण होते हैं परन्तु हमारे सम्राट को हाथों में दस अंगुली रूप दस बाण प्राप्त हैं, जिनके दर्शन मात्र से अनेकों स्त्रियाँ मूर्छित होकर गिर पडती हैं। उनके करतल अरुण वर्ण से युक्त हैं जिनकी आभा पर्वत से निकलने वाले लावे के समान है, उनके हस्त एवं चरणतल में अनेकों शुभलक्षण जन्म से ही अंकित हैं जैसे हल, कलश, कमल पुष्प, चामर, दर्पण, चक्र इत्यादि, जिनसे उनकी शोभा करोडों सूर्य-चन्द्रमा के प्रकाश को भी चुनौती देती है। हे शुकराज! अब मैं अपने स्वामी के रूप का कितना वर्णन करूँ, यदि वर्णन करने बैठी तो मेरी सम्पूर्ण आयु बीत जाये तो भी वर्णन पूर्ण नही होगा। तथापि उनके सौन्दर्य का वास्तविक प्रमाण उनकी देह नही अपितु उनके अन्तरंग में बहती शुद्ध स्वभाव की धारा है।

www.gurukahanmuseum.org

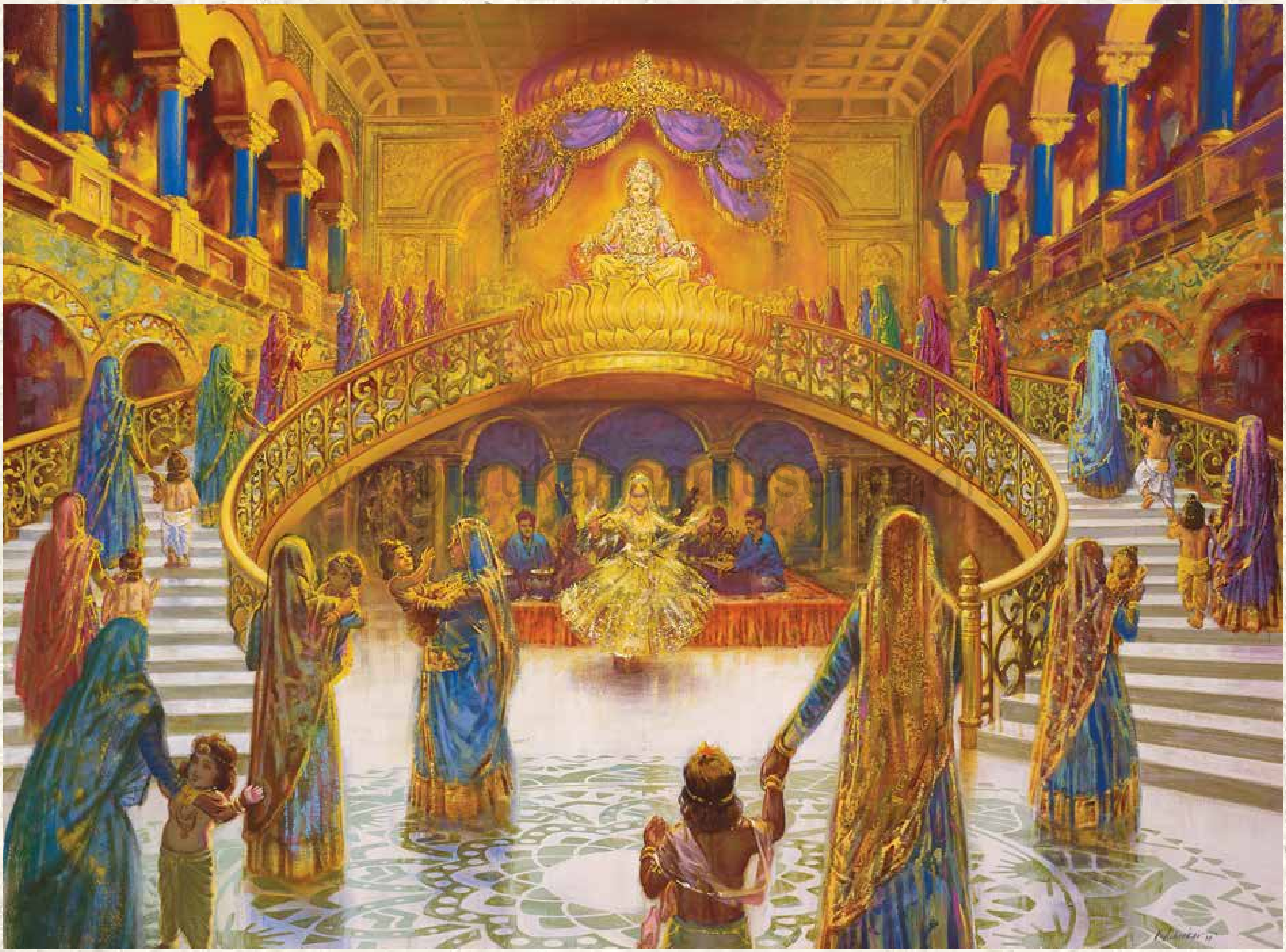

राजमहल में रानियों के साथ

36"Wx48"H | Oil on Canvas

जिनागम में वैरागी जीवों को उदासीन की संज्ञा दी गयी है, परन्तु वह उदासीनता राग-द्वेष पूर्वक नही, अपितु सम्यक्दर्शन सहित वैराग्यपूर्ण होती है, सम्राट भरत भी ऐसे ही उदासीन प्रकृति के थे क्योंकि उनके हृदय में राज सम्पदा का मोह नही अपितु पंच परमेष्ठी एवं आत्मा की भक्ति निवास करती थी। ऐसे जगत से उदासीन भरत एक दिन अपने महल में रत्नमय मण्डप में विराजमान थे। स्वर्ण महल में रत्नमण्डप पर विराजमान भरत ऐसे सुशोभित हो रहे थे कि मानो स्वयं इन्द्रसभा में देवेन्द्र ही हों। अपने दिव्य शरीर की कांति, मुख के तेज और आभूषणों की शोभा से भरत मनुष्य नही अपितु स्वय्ं अंतरीक्ष के सिंहासन पर विराजमान सूर्य के समान प्रतीत हो रहे थे। तभी अन्तःसभा के योग्य सभी सामग्री एकत्रित होने लगी, अनेक रत्नमयी मंगल द्रव्यों को लेकर दासियाँ सभा में उपस्थिति होने लगी, वीणा, किन्नरि, वेणु इत्यादि वाद्ययंत्रों को लेकर गायिकायें उपस्थिति हुई और सम्राट के चरणों में वन्दन कर अपने-अपने स्थान पर बैठने लगी। तथा जिन्हें देखने भर से हृदय में आनन्द के झरने प्रस्फुटित होते हो ऐसे भरत के दर्शनार्थ उनकी सभी रानियाँ, अपनी-अपनी संतानों के साथ एकत्रित होने लगी। उनके आगमन के इस दृश्य को देख ऐसा अनुभव हो रहा था कि मानो कामदेव के दर्शन हेतु वे रानियाँ सुमेरूपर्वत की ओर बढ रहीं हो। इसप्रकार देवांगनाओं के समान सुशोभित वे रानियाँ श्रृंगारादिक से सुसज्ज होकर एवं चाँदी-स्वर्ण के पुष्पों को स्वामी के चरणों में अर्पण कर अपने-अपने स्थान पर खडी हो गयीं। कामदेव के समान अत्यंत रूपवान सम्राट भरत ने अपनी सभी रानियों पर दृष्टि डाली और उन्हें अपने-अपने स्थान पर बैठने की आज्ञा दी। अपनी रानियों के साथ बैठे भरतेश अत्यन्त सुशोभित और मनोज्ञ प्रतीत हो रहे थे। और तभी सभा में उपस्थित मधुर स्वरों की स्वामीनि गायिकाओं पर भी भरतेश ने दृष्टि की और गायन का आनन्द महोत्सव प्रारंभ हुआ।

www.gurukahanmuseum.org

जिनमन्दिर जाते हुए भरत

36"Wx48"H | Oil on Canvas

सर्वज्ञ परमात्मा की दिव्यदेशना में श्रावकों के षट-आवश्यक कार्यों में सर्वप्रथम देव-पूजा को स्थान दिया गया है, क्योंकि वे ही जीव को सच्ची शरण हैं, उसके आराध्य हैं। इन्हीं आवश्यकों का पालन सम्राट पूर्ण हृदय एवं धर्म भावना से करते थे। वे नियमपूर्वक अपनी सभी रानियों के साथ जिनमन्दिर को जाया करते थे। समस्त राज श्रृंगार और सेना-सम्पत्ति को छोड वे भरत शुद्ध धवल वस्त्रों को धारणकर, केशों को बाँधकर, श्रीगंध से हृदय, भुजाओं इत्यादि स्थानों पर षोडश-आभरणों की रचना कर एवं मस्तक पर तिलक धारण कर कर्म शत्रु को नाश करने हेतु तत्पर धर्मचक्र के समान सुशोभित होते थे। तन पर सीमित एवं लघु आभरण, हाथों में रत्नमयी द्रव्यों से पूर्ण पूजन की थाली, पैरों में चाँदी की खडाऊ धारण कर भरत शान्त चित्त से जिनमन्दिर की ओर जाते थे। इस समय उनकी कठोर आज्ञा थी कि कोई उन्हे नमस्कार ना करे, प्रसंशा ना करे और सेवा-सुश्रुषा भी ना करे। छत्र नही, चामर नही, सेवक नही, सेना नही और ना ही राजा होने का अभिमान, क्योंकि सम्राट का हृदय तो प्रभुभक्ति के आनन्द से भर उठा है। वे तो एक शुद्ध एवं ज्ञानी श्रावक की भाँति मन्दिर में अपने आराध्य से मिलने जा रहे हैं। रानियों को भी ज्ञात है कि आज तिथि विशेष होने से भरत के संयम का दिवस है अतः उसी के अनुरूप उन सभी ने भी स्वामी के समान योगस्नान एवं धवल वस्त्र धारण कर मन्दिर की ओर भरतेश के साथ प्रस्थान किया। वास्तव में उनकी सभी रानियाँ चतुर हैं क्योंकि किसी ने भी संयम के अवसर पर काम विकार जिनसे उत्पन्न हो ऐसे वस्त्राभूषण धारण नही किये, वास्तव में तो उन्होंने मोह का नही अपितु मोक्ष का ही श्रृंगार किया है। दोनो ओर वाद्ययंत्रो की ध्वनि, आगे-आगे दिव्य शंख का आकाश नाद हो रहा है और इसमें चारों ओर से रानियों से घिरे सम्राट अत्यन्त शोभनीय प्रतीत हो रहे हैं।

www.gurukahanmuseum.org

ध्यान में लीन भरत

36"Wx48"H | Oil on Canvas

भगवान आदिनाथ की दिव्यध्वनि में सम्यक्त्वी जीवों के जीवन का अनेकांत स्पष्ट हुआ है, सम्यक्त्वी पुरुष बाहर से तो भोगों में लीन दिखाई पडते हैं परन्तु अन्तरंग से शुद्ध स्वभाव के भोगी होते हैं, इसका कारण उनकी मिश्र परिणति ही है। ऐसा ही जीवन था भरतेश का, क्योंकि वे तो स्वयं चक्रवर्ती हैं, स्वयं समर्थ हैं, विश्व के समस्त भोग-सामग्री उनके लिये क्षण भर में प्राप्त करने जैसी बात है परन्तु फिर भी उन्हें उन भोगों की चाह नही रही, उन्होंने षट खण्ड के आधिपत्य को भी जल में भिन्न रहने वाले कमल की भाँति भोगा। वे चतुर्थ गुणस्थानवर्ती क्षायिक सम्यक्दृष्टि थे परन्तु चक्र वर्ती के पुण्योदयानुसार उन्हें वे सभी भोग भोगने पडे। आत्मस्वभाव में तृप्त एवं भोगों से निर्लिप्त भरत कभी तो अपने समस्त राज-आभूषणों को हटाकर एकांत स्थान में आत्मध्यान के अभ्यास हेतु बैठा करते थे और कभी-कभी आभूषणों के होने पर भी वे ध्यान मग्न हुआ करते थे। वे ध्यान में लीन ऐसे लगते थे मानो साक्षात कोई मुनि ही हो और उन पर वस्त्रों का उपसर्ग हुआ हो। यदि मुनिराज चलते-फिरते सिद्ध हैं तो भरत भी महलों में मुनियों का जीवन जीने वाले श्रावक हैं। आत्मा को जानना ज्ञान और उसे ही जानते रहना ध्यान, इस तथ्य से परिचित भरत आत्मा को ही निर्विकल्प होकर जानते थे। आत्मा जानने में कैसे आता है, इसकी विधि तो आगम में स्पष्ट है परन्तु उस विधि के अनुरूप उसे जानने का प्रयत्न तो कोई विरले ही कर पाते हैं और उन्हीं में से एक हैं हमारे कथानायक भरत। इसीलिये तो कहा जाता है - 'घर में ही वैरागी भरत जी, घर में ही वैरागी।'

www.gurukahanimuseum.org

आयुधशाला में चक्ररत्न की पूजा

36"Wx48"H | Oil on Canvas

चक्रवर्ती अर्थात जो सुदर्शन चक्र का स्वामी है, सम्पूर्ण पृथ्वी जिसके आधीन है और जो समस्त प्रजा का एकमेव शासक है। सम्राट भरत भी इस काल के प्रथम चक्रवर्ती होने वाले हैं अतः अब उनकी आयुधशाला में चक्ररत्न प्रगट हो चुका है। सूर्य की ज्योति वाला यह रत्न मानो उसी का अंश है, उसके तेज के समक्ष इन्द्र का सारा वैभव व्यर्थ है, उसकी कांति धरती के अंतिम छोर तक पहुँच रही है, उसके प्रकाश से सूर्य भी लज्जित दिखाई पडता है और उसके बल के समक्ष हजार मल्ल भी कागज के जहाज के समान जान पडते हैं। सम्राट भरत बुद्धिसागर सहित अपने सभी मन्त्रियों, पुरोहितों एवं राज्य के विशिष्ट जनों के साथ आयुधशाला में चक्ररत्न की पूजा हेतु पहुँचे हैं। इस समय आयुधशाला में मानो एक नये सूर्य ने जन्म लिया है क्योंकि चक्ररत्न के प्रकाश ने उनकी आँखों की रोशनी को एक पल के लिये ओझल कर दिया है। आयुधशाला की शोभा आज और अधिक बढ गयी है, वह आयुधशाला कोई सामान्य नही थी, वह विश्व के सबसे शक्तिशाली शस्त्रों का भण्डार है, तीर-धनुष, कटारें, गदा, तलवार इत्यादि अत्यन्त धारदार और बलशाली शस्त्र हैं, जो वहाँ सुसज्जित हो रहे हैं। ये शस्त्र अत्यन्त दिव्य हैं इनमें सामान्य शस्त्रों जैसा साधारण बल नही, ये तो वज्र को भी काँच के समान टुकडे- टुकडे करने की सामर्थ्य रखते हैं। परन्तु इन सब शस्त्रों के बल को भी जो क्षण भर में चकनाचूर कर दे ऐसे चक्ररत्न की पूजा हेतु सम्राट भरत अपने हाथों से कमल पुष्प अर्पण कर रहे हैं। बुद्धिसागर मन्त्री ने चक्रवर्ती से प्रार्थना की कि हे सम्राट! इस चक्ररत्न की महावैभव के साथ पूजा सम्पन्न हो चुकी है, कल वीरलग्न अर्थात योग्य मुहुर्त है अतः आप दिग्विजय के लिये प्रयाण करें। ऐसा सुनकर भरत ने चक्ररत्न पर कमल पुष्प समर्पित किया और यह दृश्य देख मन्त्रीवर के मुख से सहज ही निकला - 'अहो! सूर्य को कमल मिल गया है।'

www.gurukahanmuseum.org

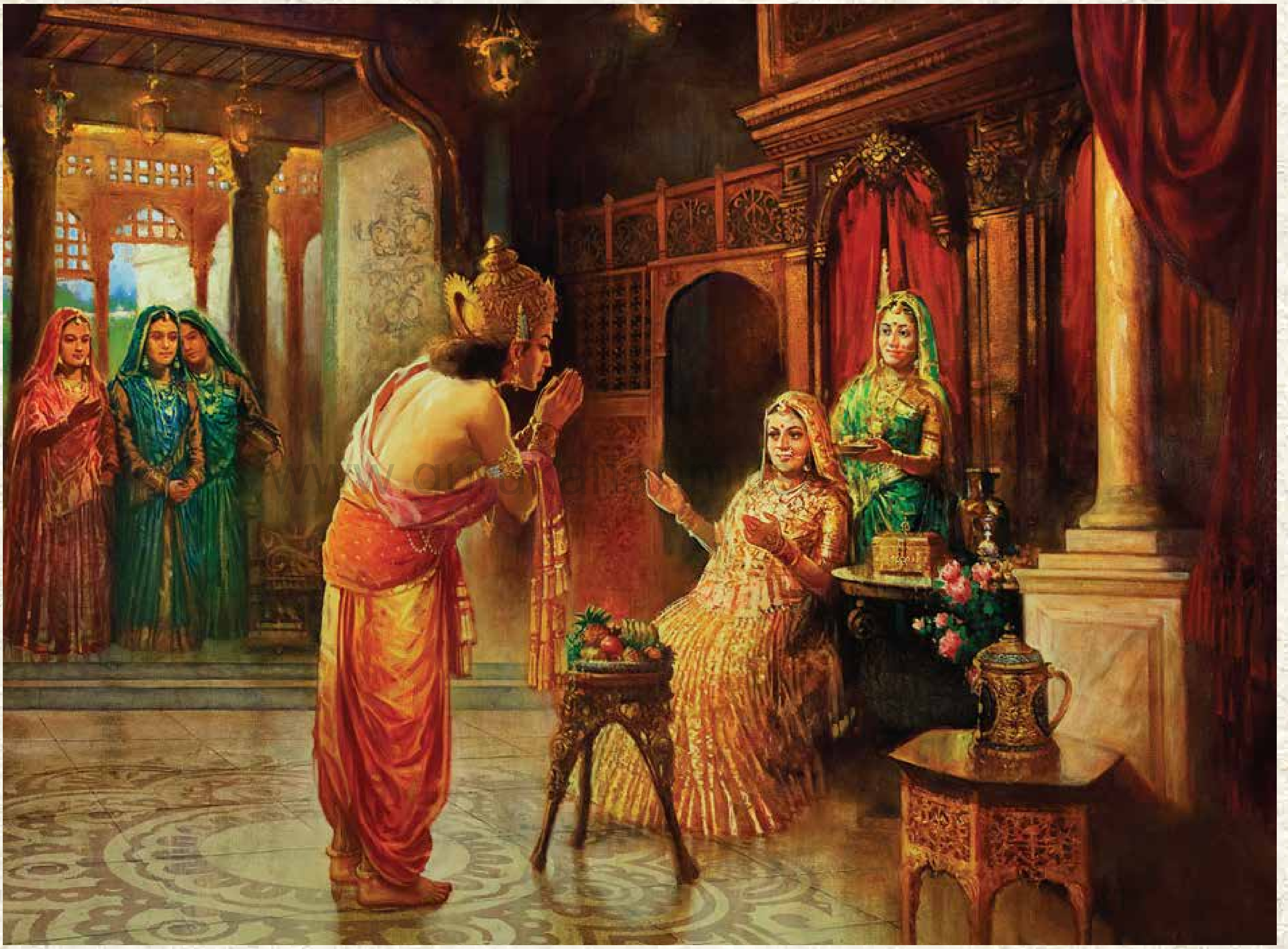

दिग्विजय हेतु माता से आज्ञा

36"Wx48"H | Oil on Canvas

आश्विन माह की दशमी का दिन है और आकाश में सूर्य उदित हो चुका है, अत्यन्त प्रकाशमान यह सूर्य ऐसा प्रतीत हो रहा है कि यह सूर्य अब कभी अस्त ही नही होगा और हो भी क्यों ना? आज सम्राट भरत षट खण्ड की विजय यात्रा पर जो निकलने वाले हैं परन्तु उससे पूर्व वे अपनी माता नन्दा (यशस्वती) से दिग्विजय प्रयाण की आज्ञा लेने उनके महल में पधारे हैं। सभी दासियाँ उनके गुणगान में स्तुति पाठ कर रही हैं और अनेकों स्त्रियों के मध्य इन्द्र के समान सुशोभित अकलंक चारित्र के धारी सम्राट भरत ने माता के चरणों में भेंट रखकर उन्हें प्रणाम किया। उस क्षण माता अपने चक्रवर्ती पुत्र को उस प्रकार निहार रही हैं जैसे शीतलता की आश में पक्षी चन्द्रमा को। सर्वांग सुन्दर एवं अत्यन्त बलशाली अपने पुत्र को देख माँ का रोम-रोम हर्षित हो उठता है, वे भरत से यहाँ आने का कारण पूछती है तो वे बताते हैं कि उन्हें चक्ररत्न की प्राप्त हुई है और आज दशमी के शुभ अवसर पर वे दिग्विजय हेतु प्रयाण करना चाहते हैं अतः माता की आज्ञा पाने हेतु आये हैं। यह जानकर कि उनका पुत्र अब दिग्विजय हेतु प्रयाण कर रहा है, माता के आँखों से आनन्द की अश्रुधारा बहने लगी, वे गर्व से प्रफुल्लित हो गयी और अपने बेटे को गले से लगाकर आशीर्वाद और मंगल वचनों की वर्षा करने लगी। वे बोली 'भरत! तुम सम्राट हो, तुम्हारे पिता ऋषभदेव प्रजा के नायक थे, उनके ही तुम वंशज हो, तुमसे ही इक्ष्वाकु वंश की मर्यादा है, मान-सम्मान है, जाओ पुत्र, जाओ। यह दिग्विजय तुम्हारी प्रतिक्षा कर रही है। यह सम्पूर्ण वसुधा तुम्हारी है, तुम ही इसके अधिपति हो, तुम्हारे सिवा इस विश्व में कोई भी इसे जीतने में समर्थ नही।' माता के ये वचन सुनकर सम्राट भरत का हृदय गर्व और सम्मान से भर उठा, वे आनन्दित होकर माता से उपहास करते हुए पूछते हैं कि 'माँ क्या आपको विश्वास है कि मैं इतना बुद्धिमान और समर्थ हूँ कि षटखण्ड को जीत सकूँ?', तब माता यशस्वती तत्क्षण अभिमान से भरकर बोलती हैं कि 'हे पुत्र! तुम्हारे भीतर चौदहवे कुलकर महाराज नाभिराय एवं इस युग के आदि तीर्थकर ऋषभदेव का रक्त है, उनकी सामर्थ्य और कुशलता के तुम पुंज हो, तुम्हारे जितना सामर्थ्यवान इस धरती पर कोई दूसरा नही, जाओ पुत्र! मुझे तुम पर पूर्ण विश्वास है, तुम विजयी होकर ही लौटोगे।' माता के इतने दृढ वचन सुनकर भरतेश ने उनके चरण स्पर्श किये और वे दिग्विजय हेतु सज्ज हुए।

www.gurukulamuseum.org

षटखण्ड दिग्विजय प्रारंभ www.gurukahanmuseum.org 42"Wx96"H | Oil on Canvas

दशमी का शुभ दिन, नभ में उदीयमान नक्षत्रराज सूर्य और धरती पर सूर्य की भी शोभा से अधिक प्रकाशमान भरत चक्रवर्ती और उनका साम्राज्य। माता से दिग्विजय की आज्ञा और आशीर्वाद प्राप्त कर भरतेश गजारूढ हुए और बहुत वैभव के साथ आगे बढने को उद्यत हुए। अयोध्या नगर के बाहर ही कुछ दूर सामने से एक विजय वृक्ष पर चक्ररत्न का प्रकाश दिखाई देने लगा, तब सेनापति की आज्ञा से चक्ररत्न को यात्रा में सबसे आगे चलाया गया। सम्राट के सेनापति का नाम जयराज है, जो अत्यन्त साहसी, विवेकी और क्षत्रिय वंशीय वीर है, उसकी ही आज्ञा से सम्पूर्ण सेना गमन करती है। सम्राट की चतुरंगिनि सेना में अठ्ठारह करोड घोडे, चौरासी लाख हाथी, चौरासी करोड वीर सैनिक एवं चौरासी लाख रथ हैं। सम्पूर्ण नगर उनके स्वागत में आतुर है, कोसों दूर तक की लम्बाई वाले स्वर्णिम तोरणद्वार बंधे हैं, लोग हाथों में अक्षत लेकर उनके विजय की कामना कर रहे हैं, देवगण आकाश से पुष्प वृष्टि कर रहे हैं, चारो ओर बस चक्रवर्ती भरत की जय-जयकार है। आकाश में एक उडता गरुड उनके विजय की निश्चिंतता का सूचक है। हाथी से उठकर उन्होंने चारो ओर दृष्टि फेरी तो उन्हें अत्यन्त गौरव एवं प्रसन्नता हुई। सबसे आगे चक्ररत्न और उसके पीछे दो उज्जवल ध्वजायें हैं, एक चन्द्रध्वजा और दूसरी सूर्यध्वजा। उनकी शोभा ऐसी लग रही है कि मानो चन्द्र और सूर्य स्वयं ही उन्हें विजय की ओर ले जा रहे हों। चक्रवर्ती की सेना के पीछे रत्नों की पालकियों में बैठी उनकी रानियाँ हैं जो अपने महाराज की विजय हेतु मंगल स्वरू प हैं। करोडों वाद्ययंत्रों की ध्वनि सिंहगर्जना के समान प्रतीत हो रही है और इन सबके बीच भरत अत्यंत आकर्षक जान पडते हैं। यह कोई साधारण यात्रा नहीं, यह तो चौदह रत्नों और सम्पूर्ण वसुधा के स्वामी भरत चक्रवर्ती की दिग्विजय यात्रा है। इसके एक-एक योद्धा में इतना बल है जो अपनी एक ही भुजा से हाथी को आसमान में उछाल देवे, उनके शस्त्रों में इतना सामर्थ्य है जिनके एक प्रहार से पर्वत के भी टुकडे-टुकडे हो जायें ऐसी सेना के स्वामी और हजारों देव जिनकी सेवा में आतुर रहते हैं ऐसे चक्रवर्ती सम्राट भरत के समक्ष यात्रा के प्रारंभ में ही आर्यखण्ड के छप्पन देश के राजा तो आधीनता स्वीकार कर चुके हैं अब म्लेच्छ खण्ड के राजाओं को आधीन करने हेतु सेना एकत्रित है।

विजयार्ध गुफा कपाट का खुलना

36"Wx48"H | Oil on Canvas

आर्य खण्ड के समस्त राजागण जिनके आधीन अपना शासन करते हो ऐसे सम्राट भरत अब म्लेच्छ खण्ड को जीतने विजयार्ध पर्वत की ओर बढे। उनकी दिग्विजय यात्रा के मध्य सभी राजाओं ने उनकी आधीनता मात्र स्वीकार ही नही की अपितु सम्मान के साथ अपनी पुत्रियों से उनका विवाह कराया और अनेकों उपहारों सहित उन्हें विदा किया और अब बारी म्लेच्छ खण्ड की है। परन्तु वहाँ पहुँचने हेतु उन्हें विजयार्ध पर्वत पर बनी तमिस्र नामक विशाल गुफा के वज्र कपाटों को तोडना होगा। यह गुफा कई सदियों से बन्द है अतः इसके अन्दर सम्पूर्ण जंगल को भी भस्म करदे ऐसी भीषण अग्नि विद्यमान है, यह बात भरत जानते है और यह भी जानते हैं कि यदि बिना किसी पूर्व योजना के इस द्वार को खोला गया तो अन्दर विद्यमान अग्नि के विस्फोट से सारी सेना में त्राही-त्राही मच जायेगी अतः उन्होंने अपने सेनाधिपति को बुलाया और गुफा के समक्ष जल की खाई बनाने का आदेश दिया। जयकुमार सहित व्यंतरेन्द्र देवों ने विजयार्ध पर्वत के समक्ष चार योजन विस्तार वाली गहरी जल की खाई का निर्माण किया और भरत को यह समाचार दिया कि अब हम विजयार्ध पर्वत पर गमन करने हेतु सज्ज हैं। सम्राट भरत ने अपने मन्त्रीवरों और विशिष्ट सलाहकारों के साथ मन्त्रणा बुलाई और प्रयाण की नीति क्या रहेगी, इस पर विचार-विमर्श किया। और अगले ही दिन सम्पूर्ण सेना के साथ भरत ने विजयार्ध पर्वत की ओर प्रयाण किया, विजयार्ध की ओर जाते हुए उनकी सम्पूर्ण सेना ऐसी प्रतीत हो रही थी कि मानो समुद्र की लहरे किसी तट को जड से नष्ट करने हेतु उछल रही हों, अग्नि की लपटें वृक्षों से भरे उपवन को जलाने आतुर हो और सघन मेघों का समूह घनघोर वर्षा कर किसी बसे-बसाये नगर को ही विनष्ट करने तत्पर हो। इतनी विकराल सेना के एक साथ गमन करने से भूमि भी काँप उठी थी। सम्पूर्ण सेना में सबसे आगे हाथ में दण्डरत्न लिये सम्राट भरत अपने पवनंजय नामक अश्वरत्न पर सवार हैं, वह अश्व कोई साधारण पशु नही अपितु अत्यन्त तेज, वीर और बलशाली है। उसकी गति बिजली के समान है, उसके बल के समक्ष अन्य कोई खडा ना रह पाये, वह अश्व एक छलांग में योजनों की सीमा नाप सकता है परन्तु सम्राट भरत उसपर अत्यन्त अचल एवं वीरता के साथ बैठे हैं। और कुछ दूर चलते ही भरत ने वज्रकपाट को देख लिया। वह वज्रकपाट पच्चीस कोस लम्बा, आठ कोस ऊँचा और बारह कोस चौडा था। अन्दर से क्रोधाग्नि धारण कर बाहर से शान्त दिखाई देने वाला वह वज्रद्वार क्षुद्र की भाँति जान पडता था। भरत द्वार के समक्ष पहुँचे और अपनी सेना को जलखाई के समक्ष रहने का आदेश देकर स्वयं दण्डायुध हाथ में लेकर सज्ज हुए और एक ही प्रहार में भरत ने उस वज्र द्वार को ईट की भाँति दो टुकडों में तोड कर अलग कर दिया। द्वार के टूटने की ध्वनि से पूरे आकाश में ध्वनि गूंजायमान हो उठी, और तीव्र गति से अग्नि की ज्वालायें द्वार से बाहर आयी। इस भयावह दृश्य को देख सेना स्तब्ध रह गयी, पवनंजय अश्व भी भयभीत होकर कूदने लगा, विजयार्ध पर्वत की भूमि काँप उठी और सम्पूर्ण पर्वत अग्निमय हो गया। इस घटना के पश्चात विजयार्ध पर्वत का स्वामी, विजयार्ध देव और तमिस्र गुफा का स्वामी कृतमाल देव वहाँ आये और सम्राट भरत की अत्यन्त प्रशंसा की, आकाश से पुष्प वृष्टि की और उन्हे अनेकों उपहार भेंट किये।

www.gurukahanmuseum.org

विजयार्ध गुफा वर्णन एवं म्लेच्छ खण्ड विजय 36"Wx48"H | Oil on Canvas

वज्र कपाट खुलते ही अग्नि के भयंकर विस्फोट से आकाश तक ज्वालायें उठी और सर्वत्र हाहाकार मच गया। सभी जन घबराकर पानी की खाई की ओर खडे रहे। सम्राट भरत यह बात जानते थे कि इस अग्नि को शांत होने में लगभग छः महीने का समय लगने वाला है अतः वे सेना सहित अपने महल की ओर चले गये। उत्तर दिशा के म्लेच्छ खण्डों की विजय में अभी समय था अतः सम्राट ने अपने पुत्र जयकुमार और विजयांक को क्रमशः पूर्व और पश्चिम दिशा के म्लेच्छ खण्ड पर विजय प्राप्त करने हेतु आज्ञा दी, जिसमें वे सफल भी रहे और उन देशों के राजाओं की पुत्रियों से सम्राट ने विवाह कर राजसंधि को दृढ किया। छः महीने व्यतीत हो चुके हैं और अब बारी उत्तर दिशा की ओर प्रयाण की है, इसी चिंतन में मग्न त्रिखण्डाधिपति सम्राट भरत की सभा में तमिस्र गुफा का देव कृतमाल आया और उन्हें गुफा की अग्नि के शान्त होने की सूचना दी। सम्राट जानते थे कि यह गुफा विचित्र है, इसके मध्य में दक्षिण की ओर मुख करती हुई सिन्धु नदी प्रवाहित हो रही है और पूर्व और पश्चिम दिशा से दो भयंकर प्रवाह वाली नदियाँ आकर मिल रही हैं, जिनके नाम क्रमशः उन्मग्न और निमग्न है। उन्मग्न नदी की लहरे इतनी ऊँची है कि उसमें जाता हुआ मनुष्य आकाश तक उछल जावे और निमग्न नदी का प्रवाह इतना तेज है कि उसमें जाता हुआ मनुष्य सीधा पाताल की ओर धस जावे अतः संभल कर जाना होगा। अन्य नदियों को चर्म रत्न की सहायता से पार किया जा सकता है परन्तु इस गुफा में बहती नदियों को पार करने हेतु एक पुल का निर्माण अवश्य ही करना होगा। यह गुफा अत्यन्त अंधकार युक्त है अतः कांकिणीरत्न की प्रभा से काम लेना होगा और उत्तर के वज्रद्वार को भी तोडकर बाहर निकलने का मार्ग तैयार करना होगा। अतः इन सब आवश्यक्ताओं को ध्यान में रखते हुए सम्राट ने पुल बांधने का कार्य भद्रमुख को, गुफा के संरक्षण का कार्य कृतमाल को और वज्रद्वार तोडने का कार्य जयकुमार को सौंपा। एक महीने बाद जैसे ही कार्य सम्पन्न हुआ तो जयकुमार ने सम्राट से विनती की कि आपके द्वारा आदेशित सभी कार्य सम्पन्न हो चुके हैं और अब हम उत्तर दिशा में जाने हेतु सज्ज हैं। एक महीने बाद प्रस्थान भेरी के दिव्यघोष से सारी सेना में उत्साह जागृत हो गया और सम्राट सभी परिजनों और सेना के साथ निकल पडे उत्तर दिशा के म्लेच्छ खण्डों को जीतने गुफा की ओर। यात्रा में सबसे आगे जयकुमार, तदनन्तर व्यंतर देवों की सेना और उनके मध्य में सुशोभित सम्राट भरतेश। उनके पीछे उनकी रानियाँ और अन्य समस्त सेना और परिजन। सम्राट की दिग्विजय की कामना हेतु देवों द्वारा आकाश से पुष्प वृष्टि हुई और सभी जन सकुशल उत्तर दिशा के मुख से बाहर निकल गये।

www.gurukahanimuseum.org

चक्ररत्न का रुकना

36"Wx48"H | Oil on Canvas

दिग्विजय पूर्ण करते हुए चक्रवर्ती सम्राट भरत अब अपने नगर अयोध्या की ओर प्रस्थान कर रहे थे, सेना के आगे चन्द्रध्वजा, सूर्यध्वज एवं चक्ररत्न जा रहे थे, थोडी दूर जाते ही पोदनपुर नगर के समीप से जब सेना जा रही थी तब चक्ररत्न एकदम रुक गया। जिसे देख सभी आश्चर्यचकित हुए क्योंकि अभी तक ऐसी घटना हुई नही थी और सभी विश्वस्त थे कि सम्राट तो अब सारी पृथ्वी भी जीत चुके हैं तो अब कौनसी आपदा आन पडी है? ध्यान देने योग्य बात यह थी कि चक्ररत्न का एक नियम है कि जिस राज्य में चक्रवर्ती के आधीन राजा हैं वहाँ तो चक्ररत्न आगे बढता है परन्तु जिस नगर के राजा चक्रवर्ती के अनुकूल अथवा आधीन नही, वहाँ वह आगे नहीं बढ सकता। भरतेश्वर ने मंत्री से चक्ररत्न के रुकने का कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि 'हे चक्रेश! समस्त पृथ्वी तो आपके आगे नत-मस्तक हो चुकी है परन्तु आप ही के समस्त भाईयों ने आपकी आधीनता को स्वीकार नही किया है, उन्हें भी आकर आपको नमस्कार करना आवश्यक है।' भरत ने सेना को वहीं रुकने का आदेश दिया और अत्यन्त विश्वास के साथ बाहुबली को छोडकर अन्य सभी भाईयों को विजयपत्र एवं आधीनता स्वीकार करने का संदेश भेजा। परन्तु 'अग्रज को राज्य का लोभ इतनः कि अपने ही सहोदर भाईयों के राज्य छीनना चाहते हैं, जब पिताश्री ने सभी को समान राज्य का अधिकार दिया था तो अब हमारे राज्य से उन्हें इतना लोभ क्यों?' पत्र पढते ही ऐसा आशय जानकर भरत के ९३ भाईयों ने तो तत्क्षण ही संसार से विरक्त हो राज्य परित्याग कर जिनदीक्षा धारण कर ली। जब भरत को यह समाचार मिला तो उन्हें अत्यंत दुख हुआ परन्तु मन ही मन अपने भाईयों के स्वाभिमान और वीरता पर गर्व भी हुआ। और अब वे अपने अत्यंत निकट एवं सबसे प्रिय अनुज बाहुबली को बुलाने के विचार की ऊहापोह में हैं, क्योंकि बाहुबली से उनका संबंध और अधिक था, यदि बाकी भाईयों ने उनके पत्र के आशय को नही जाना तो बाहुबली भी कदाचित ऐसा ही समझ सकते हैं कि मुझे राज्य का लोभ है और उनको इसप्रकार बुलाना उचित भी नही होगा। घोर चिंता में मग्न भरत ने अंत में निर्णय लिया कि इस कार्य में सबसे कुशल एवं चतुर दक्षिणांक को ही दूत बनाकर भेजना श्रेष्ठ रहेगा। अतः भरत ने दक्षिणांक को आज्ञा दी कि 'जाओ और किसी उपाय से बाहुबली को ही यहाँ लेकर आओ।' सम्राट के आदेशानुसार दक्षिणांक ने बाहुबली तक संदेश पहुँचाने हेतु साक्षात भोगभूमि सदृश नगरी पोदनपुर में प्रवेश किया। दक्षिणांक ने चक्रेशानुज बाहुबली के महल में प्रवेश लिया। बाहुबली को साष्टांग नमस्कार कर दक्षिणांक ने अनेक उपमान मंडन से उनका गुणगान किया और अपनी चतुरता से सभा में सबका मन मोह लिया। षटखण्डाधिपति भरत की दिग्विजय का समाचार सुनकर बाहुबली भी अत्यंत प्रसन्न हुए। अगले दिन जब सभा में दक्षिणांक ने बाहुबली से सम्राट के समक्ष चलकर उनसे मिलने का निवेदन किया तो बाहुबली क्रोधित होकर कहने लगे कि 'मुझे तुम्हारे आने का सत्य कारण पता है, मैं जानता हूँ कि चक्ररत्न नगर के बाहर ही रुक गया है और जब तक मैं भरत को आकर नमस्कार नही करूँगा, उसके दिग्विजय पूर्ण नही होगी।' दक्षिणांक अचम्भित हो गया और पुनः-पुनः यही कहने लगा कि 'नही! नही! महाराज! ये वास्तविक कारण नही है, हम सभी की इच्छा तो आप दोनो भाईयों को साथ देखने की है, परन्तु सत्य को किसी आश्रय की आवश्यकता कहाँ होती है!' बाहुबली सब बातें जानते थे कि किस प्रकार उनके अन्य सभी भाईयों को भरत ने आधीनता स्वीकार करने का पत्र भेजा और वे राज्य त्याग कर वन की ओर चले गये। इन सब बातों से बाहुबली अत्यन्त क्रोधित तो थे ही और दक्षिणांक के झूठ से उनका क्रोध और बढ गया था, उन्होंने मन में निश्चय तो कर ही लिया था और उनके व्यवहार से यह प्रमाणित भी हो गया था कि वे भरत को सम्राट स्वीकार नही करेंगे। अतः उन्होंने दक्षिणांक को अपने पास बुलाकर कहा कि 'हे दक्षिणांक! मैंने जान लिया है कि तुम्हारे सम्राट इस राज्य को पाने हेतु लालायित हो रहे हैं, वे मुझे अपने आधीन देखना चाहते हैं परन्तु मैं ऐसा होने नहीं दूँगा अतः जाओ अब मैं तुम्हारे सम्राट से युद्धस्थल में ही मिलूँगा।'

www.gurukahanmuseum.org

www.gurukahanmuseum.org

चक्रवर्ती का बल

36"Wx48"H | Oil on Canvas

दक्षिणांक ने सारी बात भरत को आकर बताई और भरत ने सभी को सांत्वना देकर महल में विश्राम करने हेतु गमन किया। रात्रि के तीसरे प्रहर में जब सभी सोये हुए थे, तब भरत की अचानक आँख खुलती है और कई कोस दूर उन्ही के सेना के दो सिपाही आपस में बात कर रहे होते हैं कि 'भाई, लोक में कहावत है कि बूँद-बूँद से ही सागर बनता है, बस समझ लो उसीप्रकार हम सेना के वजह से ही सम्राट चक्रवर्ती हैं, या यूँ कहलो कि धरती के सबसे शक्तिशाली पुरुष, नहीं तो वे भी एक सामान्य मनुष्य के समान ही हैं।' दूसरा सिपाही भी हामी भरता हुए कहता है कि 'हाँ भाई, तुम सही कहते हो, हाथी, घोडे और सेना की शक्ति से ही तो डराया है सबको, इसमें कैसा सामर्थ्य?' ध्यान देने योग्य बात है कि भरत कोई सामान्य पुरुष नही, उन्हें पंचेद्रियों के विषयों का उत्कृष्ट क्षयोपशम प्राप्त है, यदि वे अपने महल में रहते हुए सूर्य में स्थित जिनबिम्बों के दर्शन कर सकते हैं तो कुछ कोस दूर हो रही बातों को स्पष्ट सुना कोई आश्चर्य नही। भरत ने विचार किया कि सेना के इस भ्रम का निवारण करना होगा। अगले दिन सभा में भरत चिंतित मुद्रा में पधारे, मंत्रीयों ने निवेदन किया कि सम्राट आप व्याकुल ना हों, बाहुबली किसी प्रकार यहाँ आने को सहमत हो जायेंगे परन्तु सम्राट बोले कि मेरी चिंता का कारण यह नही, आज सुबह ही मेरे हाथ की ये छोटी अंगुली नस अकडने के कारण जरा टेडी हो गयी है। सभी ने सोचा कि ऐसा कैसे संभव है, लोक में सामान्य पुरुषों के शरीर में टेडापन हो तो वह स्वाभाविक है परन्तु इतने पुण्यवान एवं शक्तिशाली पुरुष के अंग में टेडापन आना अचम्भे की बात है। मंत्री, मित्रादिक सभी चिन्ता में थे, उन्होंने आकर हाथ लगाया तो भरत ने अत्यंत पीडा हो रही है, इसप्रकार चेष्टा की। मन्त्री ने सैकडों राजवैद्यों, मंत्रवादियों, यंत्रवादियों, निमित्तशास्त्रियों और सम्राट के खास अंगवैद्य को भी बुलाया परन्तु कोई लाभ नही हुआ। मन्त्रियों ने सम्राट से ही पूछा कि आप क्या चाहते हैं किसप्रकार उपचार हो तो उन्होंने कहा कि औषधि आदि की आवश्यक्ता नही है, किसी अन्य उपाय से ही इस कार्य को करो। बुलाओ सबसे शक्तिशाली पहलवानों को। भरत के कहते ही तत्क्षण वहाँ पहलवानों का समूह आगया। भरत ने कहा कि तुम इस अंगुली को पकडकर खींचकर सीधा करो। उन्होंने बहुत शक्ति से खींचा परन्तु कुछ नही हुआ, भरत बोले कि डरो मत, लगाओ अपनी पूरी शक्ति, उन्होंने फिर प्रयत्न किया, फिर भी कुछ बात नही बनी। भरतेश ने अंगुली थोडी सी ढीली करी तो सारे पहलवान दूर जाकर गिरे। तब भरत ने विश्वकर्मा की ओर देखा और कहा कि एक ऐसी सांकल का निर्माण करो जो ४८ कोस तक फैली सारी सेना में पहुँच सके, उनके मुख से यह बात्त निकली ही थी कि विश्वकर्मा ने इतनी बडी लोहे की मजबूत सांकल बनाकर सारी सेना के हाथों तक पहुँचा भी दी। भरत ने आज्ञा दी कि इस सांकल को मेरी अंगुली से बाँधो और सारी सेना को कहो इसे मिलकर पूर्ण शक्ति से खींचे, ऐसा ही हुआ तब भी कुछ बात न बनी, फिर आज्ञा हुई कि अब हाथी, घोडे आदि सभी सैनिक-योद्धा मिलकर खीचों, भरत के मन्त्री-मित्र-संताने भी आगे आयी, परन्तु भरत ने उन्हें दूर रहने को कहा। आदेशानुसार सबने ऐसा ही किया, कुछ समय के लिये युद्ध जैसा वातावरण हो गया, सभी अपनी भरपूर शक्ति से इस कार्य में जुट गये लेकिन फिर भी वह अंगुली सीधी नही हुई। आश्चर्य की बात थी कि भरत की अंगुली के स्पर्श मात्र से वह पूरी सांकल सोने की हो गई। जिस समय सभी जोर लगाकर खींच रहे थे तब भरत ने पुनः अंगुली को थोडा ढीला किया तो सभी बहुत जोर से नीचे गिर पडे। किसी को समझ नही आ रहा था कि ऐसा क्यों हो रहा है? भरत गंभीर मुद्रा में चिंतामग्न होकर बैठ गये, तभी सबसे बोले कि एक कार्य करो, आप सभी लोग एक जोर से खींच के रखो मैं इस तरफ से खींचता हूँ, तब कदाचित कार्य बन जाये। ऐसा ही हुआ तब भरत ने अपनी अंगुली को जरा सा झटका तो सारी सेना मुँह के बल गिरी, ऐसा लग रहा था मानो सभी सम्राट को साष्टांग नमस्कार कर रहे हों। देखो! ४८ कोस में व्याप्त सेना ने अपनी पूर्ण शक्ति लगाई तब भी एक अंगुली सीधी नही कर पाई। अब यदि एक अंगुली में इतनी शक्ति है तो अंगुष्ठ में कितनी शक्ति होगी, मुष्टि में कितनी शक्ति होगी और पूरे शरीर में तो फिर कितना बल होगा, उसकी कल्पना करना भी दुष्कर है। सम्राट की शक्ति अवर्णनीय है। भरतेश मुस्कुराये तब मंत्री-मित्रों ने समझ लिया कि ये बनावटी रोग है तो सम्राट से बोले की इस रोग का हमारे पास उपाय नही हुआ, आप ही समाधान करें तब भरत ने अंगुली सीधी करके दिखाई और पिछली रात्रि का सारा वृत्तांत सभा में बताया। अहो! सत्य ही है जिनका आत्मबल अधिक होता है, उनके शरीर में ऐसा बल होना, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं।

बाहुबली युद्ध गमन

36"Wx48"H | Oil on Canvas

सेना से भरत के पराक्रम के संबंध में समाचार प्राप्त हुआ कि किस प्रकार एक अंगुली के बल से उन्होंने सम्पूर्ण सेना को शिक्षा दी। परन्तु यह सुनकर भी उन्हें भय नही हुआ, उन्हें युद्ध टालने का विचार भी नही आया। सत्य ही है! कर्मोदय किसी के आधीन नही। आगे इसी निमित्त से बाहुबली को दीक्षा ग्रहण होनी है। बाहुबली ने अपने सेनापति गुणवसन्तक को बुलाकर कहा कि 'युद्ध की तैयारी की जायें, हमें अब विलम्ब नही करना चाहिए।' महाराज का आदेश पाकर सेना सज्ज हुई। बाहुबली भी अपने महल की ओर गये, मार्ग में माता सुनन्दा के दर्शन हुए, माँ ने बडे ही भारी मन से पुत्र के इस कार्य को धिक्कारा, वे बोली कि लोक में छोटा भाई बडे भाई को नमस्कार करता ही है, क्या ऐसा करने से वह उसके आधीन देखा जाता है? इसी अज्ञानता के कारण तुम्हारे बाकी भाईयों ने भी भरत के साथ ऐसा व्यवहार किया और अब तुम भी उसी ओर जा रहे हो। तुम्हे हमारे संतोष और सुख का क्या जरा भी विचार नही है। माता के कठोर वचन सुनकर बाहुबली ने सोचा कि यदि माता को सत्य बताया तो वे और चिंतित होंगी अतः बाहुबली बोले 'माते! आपका कहना उचित ही है, बडे भाई को नमस्कार करने से मैं छोटा थोडे ही हो जाऊँगा, अभी तक मेरे मन में क्रोध और विकृत परिणाम थे, परन्तु आपकी बात सुनकर मुझे अब कोई क्लेश मन में नही है। मैं अब भ्राता भरत से प्रेम भेंट करने अवश्य जाऊँगा, आप चिंता ना करें।' बाहुबली के मधुर वचन सुनकर माता सुनन्दा को संतोष हुआ और वे वहाँ से अपने महल की ओर चली गयीं। बाहुबली को भी माता के संतोष में अपना सुख दिखाई दिया परन्तु माता से कहे वचन पूर्ण सत्य नही थे, उन्होंने भरत को अभी भी नही अपनाया था, उनकी मंशा तो अभी भी युद्ध की ही है। तत्पश्चात वे अपने श्रृंगारग्रह की ओर जाने लगे, जहाँ उनकी रानियों ने उन्हें बहुत समझाया कि वे भरत से युद्ध ना करें क्योंकि उनकी भी बहनें भरत से विवाहित हैं, यदि आप दोनों में परस्पर क्लेश होगा तो हम किसप्रकार उनसे मिल सकेंगे इत्यादि। रानियों की बातें मौन पूर्वक सुनकर बाहुबली अंत में वहीं वचन कहने लगे जो उन्होंने माता से कहे थे और अपनी ८००० रानियों को भी सान्त्वना देकर वहाँ से चले गये। युद्धाभूषणों से सज्ज होकर बाहुबली अपने महल से बाहर निकलते हैं, जहाँ द्वार पर माकंद नाम का सुन्दर सश्रृंगार हाथी, उनके सभी पुत्र, रानियाँ, परिजन एवं चतुरंग सेना खडी है। बाहुबली हाथी पर चढ जाते हैं और महल से रण की ओर प्रस्थान करते हैं। हाथी पर सवार बाहुबली की शोभा इन्द्र से कम नही थी, उनके मस्तक पर एक श्वेतछत्र सुशोभित हो रहा था, सारे नगर वासी अपने-अपने घरों के बाहर एवं छतों पर चढकर बाहुबली को समस्त वैभव के साथ प्रयाण करते हुए देख आनन्दित हो रही थी। सब लोग आँख भर-भरकर बाहुबली को देख रहे थे मानो आज के बाद उनके दर्शन भाग्य में नही होंगे। इसप्रकार शक्ति-वैभव सम्पन्न बाहुबली राजमार्ग से होते हुए पोदनपुर नगर से बाहर निकल रहे थे। परन्तु मार्ग में जाते हुए अनेक अशुभ संकेत भी उन्हें देखने को मिले जैसे आकाश में कौआ दाई ओर से बाई ओर उड रहा था, दाहिने तरफ पेड पर बैठी छिपकली बोल रही थी। इन अशुभ संकेतों को देखकर भी बाहुबली ने उन्हें अनदेखा कर दिया। आगे बढने पर एक व्यक्ति अपने सभी आभरण एवं वस्त्रादिक उतारते हुये देखा गया, जोकि शायद वह उनके भावी दिगम्बरत्व की ओर संकेत कर रहा था। इन सभी संकेतों को देख बाहुबली के मंत्री एवं इष्टजनों ने उनसे निवेदन किया कि आज वे युद्धगमन के विचार को त्याग दें आज शुभ मुहुर्त नही है, तथापि बाहुबली नही माने और प्रस्थान करते हुए भरत के समक्ष पहुँच गये।

www.gurukahanimuseum.org

मन्त्री मन्त्रणा

36"Wx48"H | Oil on Canvas

लौकिक और पारमार्थिक, दोनो ही जीवन में एक सत्य पूर्ण रूप से स्थापित है कि जब तक पूर्ण सत्य एवं परिस्थितियों का ज्ञान ना हो, उसपर प्रतिक्रिया नही करना तथापि अज्ञानता और अशुद्धता के वश जीव अपने स्नेही एवं हितकारी जनों को भी अपने भ्रम की परिधि में शामिल कर लेता है। ऐसी ही परिस्थिति भरत-बाहुबली की थी। भरत, बाहुबली के अन्तर्मन को नही समझ पा रहे थे और बाहुबली, भरत के अन्तर्मन को और इसी ऊहापोह का परिणाम था कि एक ही पिता की संताने ऐसी वस्तु के खातिर युद्ध स्थल में एक-दूसरे के सामने आ खडी थी जिसे शास्त्रों में कहीं-कहीं व्यभिचारिणी की भी संज्ञा दी है अर्थात लक्ष्मी व जड वैभव। ये दोनों भाई तो एक-दूसरे के प्रति परस्पर स्नेह की हत्या कर युद्ध के लिये सज्ज हो चुके थे परन्तु इनके महायुद्ध के विनाशकारी परिणामों का भय इन्हें नही था। इसकी चिंता इन दोनों राजाओं के बुद्धिमान मन्त्रियों और पुरोहितों को हुई तब वे आपस में मिले और इसका उपाय खोजने का प्रयत्न करने लगे। उनका कहना था कि बाहुबली को सभी ने समझाया परन्तु वे अपनी हठ पर अडे हैं अतः युद्ध तो होगा ही और साधारण सी बात है कि जब चक्रवर्ती और कामदेव का युद्ध होगा तो यह कोई सामान्य युद्ध नही होगा। ये एक दूसरे के प्रति झुकेंगे तो है नही और बाहुबली चक्रवर्ती को परास्त कभी कर नही पायेंगें, यह बात भी सभी समझते हैं। परन्तु ये दोनो भाई कैसे युद्ध करेंगे? कुसुमास्त्र से या लोहास्त्र से? कुसुमास्त्र का तो यहाँ कोई लाभ नही, जाहिर सी बात है कि युद्ध लोहास्त्र से ही होगा और भरत-बाहुबली तो चरम शरीरी एवं वज्रकाय हैं, इनके साथ कुछ होना तो असंभव है। परन्तु दों पर्वतों के घर्षण से जिसप्रकार बीच में आये पदार्थ नष्ट हो जाते हैं उसीप्रकार इन महाबलियों के युद्ध में सम्पूर्ण सेना का ही विध्वंस हो जायेगा। अतः बुद्धिमत्ता इसी में है कि युद्ध परस्पर हो, जिसमें सेना का प्रयोग ना किया जाये क्योंकि व्यर्थ में सेना को युद्ध में शामिल करने से कोई लाभ नही है। इसलिये सभी मन्त्रियों एवं पुरोहितों ने निर्णय किया कि भरत-बाहुबली से धर्मयुद्ध की प्रार्थना कर जय-पराजय का निर्णय होने हेतु निवेदन किया जाये और इसी उद्देश्य से वे सभी भरत-बाहुबली से भेंट करने पधारे।

www.gurukahanmuseum.org

धर्मयुद्ध की जानकारी

36"Wx48"H | Oil on Canvas

भविष्य में होने वाले महाविनाश से चिन्तित बाहुबली एवं भरत के समस्त मन्त्रिजनों ने उनके समक्ष जाकर धर्मयुद्ध की प्रार्थना करने का निर्णय लिया। सर्वप्रथम वे षटखण्डाधिपति चक्रवर्ती सम्राट भरत के समक्ष गये। भरत ने उनसे उनके आने का कारण पूछा तो उन्होंने कहा 'स्वामिन! युवराज बाहुबली ने लोहास्त्र से युद्ध करने की ठानी है अतः निश्चित ही आप के साथ तो सेना नगर में प्रवेश नही कर सकेगी क्योंकि उन सभी का विनाश तो युद्ध स्थल में ही हो जायेगा क्योंकि आप लोग तो महापराक्रमी हैं, महायोद्धा हैं। जब आप लोग हाथों में अस्त्र लेकर युद्ध करेंगे तो इस धरती पर तो प्रलयकाल सम विनाश ही छा जायेगा। आप दोनों तो वज्रकाय हैं, जब आप सम देही युद्धभूमि में प्रवेश करेंगे तो काँच की चूडियों की दुकान में दो मदोनमत्त हाथियों के प्रवेश के समान स्थिति हो जायेगी।' सम्राट भरत अधिक बुद्धिमान, धैर्यवान एवं दूरदृष्टिवाले थे अतः उन्होंने बीच में ही रोककर उन्हीं से पूछा कि 'आप लोग क्या चाहते हैं, वह कहें?' तो उत्तर में उन्होंने कहा 'जी सम्राट, हमने मन्त्रणा करके एक उपाय खोजा है परन्तु भय इस बात का है कि आपको वह उपयुक्त लगे अथवा नही!' भरत बोले कि 'आप निःसंकोच होकर बोलें, प्रजा के हित में ही मेरा हित है, अतः बतायें।' मन्त्रियों ने कहा 'स्वामिन! प्रजा, सेना और देश के हित का विचार करते हुए आप धर्मयुद्ध स्वीकार कीजिये। दृष्टि युद्ध, जल युद्ध एवं मल्ल युद्ध, इन तीन के अलावा और कोई युद्ध नही होना चाहिए, ऐसा हमारा विचार है।' उपाय सुनते ही भरत ने स्वीकृति दी और कहा कि मुझसे पूछने की आवश्यकता नही है, मुझे इसमें कोई आपत्ति नही, बाकि बाहुबली जैसा चाहेगा, उसकी इच्छानुसार कार्य करें। जैसा सोचा था, वैसा ही पाया, इस बात को मन में धारण कर वे सभी वहाँ से संतोष पूर्वक बाहुबली के पास चले गये। बाहुबली के समक्ष जाकर सभी ने प्रणाम किया, बाहुबली ने उनसे वहाँ आने का कारण पूछा तो वे बोले की 'स्वामिन! आप से कुछ प्रार्थना करना चाहते हैं परन्तु आपके नाराज होने का भय है।' बाहुबली बोले 'मैं समझ गया, आप लोग युद्ध रुकवाने ही मेरे पास आये हो और क्या? परन्तु ऐसा कदापि संभव नही है।' मन्त्रीगण बोले 'नही, नही महाराज! युद्ध तो होना ही चाहिये, हम यहाँ युद्ध रुकवाने नही आये हैं।' तब बाहुबली प्रसन्न होकर बोले कि 'तब डरने की आवश्यक्ता नहीं, बोलो जो बोलना चाहते हो।' मन्त्रीगण बोले कि 'युद्ध होने दीजिये परन्तु सम्पूर्ण सेना के साथ नही, आप दोनों का परस्पर भुजबल युद्ध होना चाहिये क्योंकि आप तो महाबली हैं आपको तो कोई भय नही परन्तु इस महायुद्ध में व्यर्थ में ही सेना का नाश होगा अतः हमारी विनती है कि इस धर्मयुद्ध के प्रस्ताव को स्वीकार करें।' बाहुबली को भी जानकर यह संतोष हुआ और उन्होंने स्वीकृति दी। मन्त्रियों ने धर्मयुद्ध की सम्पूर्ण जानकारी देते हुए कहा कि सर्वप्रथम दृष्टि युद्ध होगा जिसमें एक-दूसरे के मुख बिना पलक बंद किये देखना है, जिसके नेत्र पहले बंद होंगे वह हार जायेगा। दूसरा जलयुद्ध होगा जिसमें एक-दूसरे के मुख पर पानी फेंकना होगा वहाँ जो पहले मुख को हटायेगा वह पराजित होगा तथा अन्तिम एवं सबसे बलशाली है मल्लयुद्ध, जिसमें आप अपनी भुजाओं के बल का प्रयोग करेंगे, वहाँ जो पहले अपने प्रतिद्वन्द्वी को एक हाथ से उठा लेगा वह विजयी होगा। इसप्रकार इन तीन युद्धों के माध्यम से विजयी का निर्णय होगा। महाराज! मन्त्रीयों के विचार सुनकर बाहुबली ने इन तीनों युद्धों की स्वीकृति दी और युद्धभूमि में मिलने का संदेश भरत के लिये दिया। बहुत संतोष के साथ सब वहाँ से सम्राट के पास गये और सारा वृत्तांत उन्हें सुनाया एवं यह निर्णय हुआ कि यदि कामदेव हारेंगे तो वे चक्रवर्ती सम्राट के चरणों में नमस्कार करेंगे और यदि भरतेश की हार हुई तो बाहुबली भरतेश को नमस्कार किये बिना लौट जायें और निश्चिंत होकर पोदनपुर का राज्यभार संभालें।

www.gurukahanmuseum.org

भरत-बाहुबली युद्ध

36"Wx48"H | Oil on Canvas

भाग्य के पडाव में आज दो भाई एक-दूसरे के सामने उस जड संपदा की प्राप्ति हेतु लडने को तैयार हो गये हैं, जिसे उन्हीं के पिता आदिनाथ ने काकबीट समान जानकर हजारों वर्ष पूर्व ही छोड दिया था। दोनों पक्षों की सेना में इस बात की घोषणा पूर्व में ही हो चुकी थी कि युद्ध दोनो भाईयों में ही होगा। रण में खडे बाहुबली पर्वत के समान अचल, गंभीर और बलशाली दिखाई दे रहे थे और दूसरी ओर भरत को भी बाहुबली के आगमन की सूचना दी और चलने का निवेदन किया। भरत, बाहुबली के समक्ष आकर खडे हो गये। भरत ने बोलना प्रारंभ किया - 'भाई! यह निष्कारण युद्ध करने का क्या लाभ? तुम्हारी कोई सम्पत्ति मैंने नही छीनी, ना तुमने मेरी। हम एकही पिता की दो संतानें, हमें यह कहाँ शोभा देता है? क्या भाईयों में भी कभी द्वेष होता है? मैंने तो तुम्हें मात्र देखने के विचार से बुलाया था तब इतना क्रोध क्यों? तुम विचार कर रहे होगे कि मैं युद्ध से डरकर यह सब कह रहा हूँ परन्तु ऐसा नही है, युद्ध तो मैं अवश्य करूँगा, परन्तु पहले मन में चल रहे युद्ध से तो लड लूँ। यदि कोई शत्रु मेरे समक्ष होता तो मैं उसे कबका हराकर भगा देता परन्तु तुम तो मेरे सगे भाई हो, तुम्हें किसप्रकार मैं युद्ध में अपने सन्मुख देख सकता हूँ। मैं तुमसे बडा हूँ इसीलिये तो मैंने तुम्हें अपने पास बुलाया था तो क्या गलत किया। मुझे तुम जीत लोगे तो क्या तुम्हें कीर्ति मिल जायेगी और मैं तुम्हें जीत लूँगा तो क्या मुझे यश मिल जायेगा? नहीं भाई, हम दोनों ही लज्जित होंगे। जाओ तुम जीते मैं हारा। भरत के वचन सुनकर सम्पूर्ण सेना, मंत्री-मण्डल, देवों में खलबली मच गयी, वे कहने लगे कि सम्राट ये आप क्या कह रहें हैं? भरत बोले भाई! उपचार के लिये या दुखी मन से नही कह रहा हूँ। तुम्हारे सामर्थ्य को मैं भली प्रकार जानता हूँ, सुनो, सारी सेना सुनो, आप सभी सुनो। दृष्टि युद्ध में तुम्हारी जीत है क्योंकि तुम मुझसे २५ धनुष अधिक ऊँचे हो, इसलिये तुम मुझे सरलता से देख सकते हो परन्तु मुझे ऊर्ध्वदृष्टि करके देखना होगा अतः मुझे कष्ट होगा और मैं हार जाऊँगा।' जलयुद्ध में भी तुम्हारी ही विजय है क्योंकि तुम मुझसे ऊँचे हो, मैं तुम्हारी छाती तक ही पानी फेंक सकता हूँ परन्तु तुम तो मुझे डुबा सकते हो, ऐसी अवस्था में मेरी हार निश्चित ही है।' मल्लयुद्ध की तो आवश्यक्ता ही नही, पिताश्री ने तुम्हारा नाम बाहुबली रखा है, तुम्हें कौन बाहुबल में परास्त कर सकता है, इसमें तुम प्रबल हो अतः सहजता से तुम मुझे उठा सकते हो।' भरतेश्वर बोले कि 'अनुज! अब हृदय को शांत करो!' और इसप्रकार कहते हुए भरत ने भ्रातृप्रेम का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण जगत के समक्ष प्रस्तुत किया। भरत पुनः कहते हैं कि 'मुझे ना षटखण्ड के वैभव की, ना चक्ररत्न के सामर्थ्य की, ना असंख्य देवों की अभिलाषा है, ना लोभ है। मैं तो इन्हें पूवीपार्जित पुण्योदय जानकर भोग रहा हूँ। तुम इन्हें स्वीकार करो।' पुनः भरतेश ने चक्ररत्न को बुलाकर कहा कि 'हे चक्ररत्न! मुझे अब तुम्हारी आवश्यक्ता नही, तुम्हारे अधिपति अब बाहुबली हैं' इसप्रकार कहते हुए भरत ने चक्ररत्न बाहुबली की ओर भेजा। भरत के बार-बार कहने पर भी चक्ररत्न बाहुबली के पास नही गया अंत में भरत ने बलपूर्वक चक्र को बाहुबली की ओर धक्का दिया परन्तु चक्ररत्न थोडा ही आगे पहुँचकर खडा हो गया। वास्तव में युद्ध तो नही हुआ परन्तु विजय-पराजय तो हो गयी थी, विजय; भरत के प्रेम की और पराजय; बाहुबली के क्रोध की।

www.gurukahanmuseum.org

बाहुबली का वैराग्य

36"Wx48"H | Oil on Canvas

जैन आध्यात्मिक कवियों ने भी कमाल किया है, ज्ञानियों की विचित्र परिणति हेतु वे कहते हैं - 'चिन्मूरत दृग धारी की मोहे, रीति लगत है अटापटी' आहा! जिसप्रकार सूर्य के प्रकाशित होते ही अंधकार उल्टे पाँव भागता हुआ दिखाई देता है उसीप्रकार भरत के मृदुवचनों से बाहुबली का क्रोध रूपी अंधकार भाग गया और वे चिंतामग्न होकर खडे हो गये। सभी मन्त्री-पुरोहित, विद्वज्जन, संतानें और सर्व सेना ने भरत के चातुर्य और वात्सल्य की मुक्तकंठ से अत्यंत अनुमोदना और प्रशंसा की। परन्तु अब बाहुबली की मनोदशा पूर्ण रूप से बदल चुकी है, उन्हें अपने द्वारा किये गये दुष्कर्मों का भान हो रहा है, वे मन ही मन विचारते हैं कि 'मेरे द्वारा षटखण्डाधिपति और मेरे ही बडे भाई भरत का, मेरे हितैषियों का, मेरी माता एवं आठ हजार रानियों के विश्वास का, मेरे और भरत के पुत्रों का, चक्ररत्न का एवं सम्पूर्ण भारत की प्रजा का अपमान हुआ है। हाय! मैंने यह क्या कर दिया, भले ही मेरा नाम मदन हो परन्तु मेरा हृदय तो पत्थर का है, मैंने अपने ही भाई से युद्ध करने का विचार किया भी कैसे? वास्तव में इस संसार की गति विचित्र है, अब आगे मैं राज्य नही कर सकूँगा, सम्पूर्ण प्रजा व अन्य राजा मेरा तिरस्कार करेंगेः नही! अब दीक्षा लेना ही श्रेष्ठ उपाय है, यही वह अवसर है जब मैं अपनी आत्मा का कल्याण कर अपने पिता के मार्ग को अपना सकता हूँ।' बाहुबली जब अपने अंतर्द्वन्द्व से बाहर आये तो उन्होंने देखा कि सर्व सेना उन्हें ही नमस्कार कर रही है, सर्व विद्याधर राजा, देवगण, सम्राट और उनकी सेना, सर्व मन्त्रीगण एवं पुरोहित, परन्तु अब बाहुबली को ये सब अपयश लग रहा है, वे विचार रहें हैं कि ये सब मुझे नमस्कार क्यों कर रहे हैं, वे उनकी इस प्रतिक्रिया से लज्जित होने लगे तब उन्होंने निर्णय किया कि अपने मन की सारी बात अब बडे भैया से साफ- साफ कहने में ही भलाई है। बाहुबली ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से भरत से क्षमा माँगी, वे कहने लगे कि 'भैया, मैंने आपके प्रति जो ये दुष्कार्य किया है, इसके लिये लोक मुझे कभी क्षमा नही कर सकेगा, क्षणभंगुर कर्मोदय के कारण मेरे द्वारा यह दुष्कृत्य हुआ, मुझे इसका अत्यंत दुख है', भरत अपने आसन से खडे होकर बाहुबली को गले लगाकर बोले कि भाई, कोई बात नहीं, तुम व्यर्थ में खेदखिन्न ना हो, तुम्हारे किसी भी कार्य पर मुझे कोई असंतोष नही है, तुम कोई चिंता मत करो। परन्तु बाहुबली के मन का असंतोष नही पूर्ण हो रहा था, वे कहते हैं कि 'भैया आपके वचन सुनकर मुझे अब कोई चिंता नही, परन्तु मेरी एक इच्छा है, उसे आप स्वीकार कीजिये।' भरत ने पूछा कि 'बोलो भाई! तुम क्या चाहते हो? मैं तुम्हारी सर्व इच्छाओं को पूर्ण करूँगा।' बाहुबली बोले - 'भैया मुझे जिनदीक्षा लेने की अनुमति दीजिये, मैं वन में जाकर ध्यान करने की भावना रखता हूँ।' यह बात सुनकर भरत अत्यंत आश्चर्य और शोक में पड गये, अश्रुनेत्रों से बाहुबली को आलिंगन देते हुए बोले कि 'भाई, यह भूलकर कुछ भी मांग लो, परन्तु यह नही। अब दीक्षा का विचार क्यों? युद्ध तो हुआ ही नही, तब दीक्षा के लिये जाने का क्या कारण? इस मोक्ष कार्य में हम दोनों साथ में कुछ समय पश्चात विचार करेंगे ही, परन्तु अभी नही भाई! मैं तुम्हारे साथ रहना चाहता हूँ। कृपया ऐसा कहकर मुझे निराश मत करो।, मेरे अन्य भाईयों की भाँति तुम भी यदि मुझे छोड कर चले जाओगे तो मैं क्या करूँगा?' बाहुबली बोले 'भैया, युद्ध होना ना होना कारण नही, परन्तु मैंने आपका विरोध करने की क्षुद्रता की है, इसलिये मेरा अन्तर्मन इस ग्लानि को स्वीकार नही कर पा रहा है।' भरत ने बाहुबली को बहुत समझाया, बहुत मनाया परन्तु बाहुबली की होनहार अब आ चुकी है, वह समय अब आगया है जिसका हर भव्य जीव को इंतजार रहता है, वह क्षण जब वह अनन्त ज्ञानियों के मार्ग पर चलने का प्रथम पडाव पार कर दूसरे पडाव अर्थात मुनिदीक्षा की ओर अग्रेसर होता है। कालदोष के कारण भरत का अपमान हुआ परन्तु भरत को अपना भाई अधिक प्रिय है, वे उसे रोकते हैं परन्तु बाहुबली भरत से आज्ञा ले ही लेते हैं और वन की ओर प्रस्थान करने लगते हैं। बाहुबली अपने पुत्र को भरत की सेवा में नियुक्त करते हैं, भरत की आँखों में आँसू हैं परन्तु बाहुबली मुस्कुरा रहें हैं और सबसे विदा लेकर वे वन की ओर चले जाते हैं।

www.gurukahanmuseum.org

मुनिराज बाहुबली शल्य निवारण

36"Wx48"H | Oil on Canvas

भरत से आज्ञा पाकर बाहुबली ने वन की ओर प्रस्थान किया, अब उन्होंने मुड कर नही देखा क्योंकि जो अपनी आत्मा को देख लेता है उसे अब कुछ और देखने की आवश्यक्ता नही रहती। परन्तु अभी एक दुर्घटना और हुई, बाहुबली जब वन की ओर गमन कर रहे थे तो उन्होंने दो राजाओं को बात करते हुए सुना वे कह रहे थे कि 'अब बाहुबली ने सब त्याग तो दिया है, परन्तु वे जायेंगे कहाँ', दूसरा बोलता है 'भाई! वन में! और कहाँ?' पुनः दूसरा व्यक्ति कहता है कि 'भाई! ये तो मैं जानता हूँ कि बाहुबली अब वन की ओर जा रहे हैं, परन्तु जिस राजा और उसके राज्य का इन्होंने तिरस्कार पूर्वक त्याग किया है, उस राजा अर्थात सम्राट भरत का आधिपत्य तो सम्पूर्ण पृथ्वी पर है, ये वन, जंगल, सरोवर, पर्वत, नगर आदि सभी षटखण्डाधिपति भरत के ही हैं, तब इस स्थिति में बाहुबली ध्यान, आहार, विहार भी भरत की ही भूमि पर करने जा रहे हैं।' दूसरा व्यक्ति भी सहमति जताते हुए कहता है कि 'हाँ भाई! तुम सही कहते हो, आखिर यह सर्व भूमि भरत की ही तो है।' बाहुबली इन दोनों की बात सुनते हुए वन की ओर गमन करते हुए कैलाश पर्वत पर दीक्षा धारण कर मुनि अवस्था अंगीकार की। वहीं दूसरी ओर भरत ने जब यह संदेश अन्य सभी परिवारजनों को बताया तो वहाँ शोक का माहोल छा गया, सभी रानियाँ, माँ सुनन्दा, माँ यशस्वती सभी रोने लगे और बाहुबली से मिलने और उनके वापिस आने की कामना करने लगे। भाई के जाने से भरत भी अत्यधिक उदास थे, वे भी अपने भाग्य को कोसने लगे कि ये कैसा पुण्य जिसको पाने से सभी स्वजन छोड कर चले गये। बाहुबली से प्रेरित होकर उनकी आठ हजार रानियों ने भी आर्यिका दीक्षा व्रत अंगीकार करने का निर्णय लिया और भरत ने भी अपनी माताओं के साथ अयोध्या नगर में प्रवेश किया। एक वर्ष बीत गया, भरत चक्रवर्ती अपने राज्य में सुख पूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे थे कि तभी महल में अनन्तवीर्य एवं कच्छ-महाकच्छ मुनिराज को केवलज्ञान प्राप्त होने की सूचना मिली, सभी अत्यंत हर्षित एवं भक्तिमग्न हुए कि तभी भरत को विचार आया कि बाहुबली को अभी तक केवलज्ञान की प्राप्ति क्यों नही हुई और इसी के समाधान हेतु वे विमानारूढ होकर कैलाश पर्वत पहुँचे और वहाँ भगवान आदिनाथ से बाहुबली मुनीन्द्र के संबंध में प्रश्न किया और भगवान की वाणी में रणभूमि पर हुआ सारा वृत्तांत आगया। भरत को इसका अत्यंत खेद हुआ और वे बाहुबली मुनीन्द्र के समक्ष जा पहुँचे और नतमस्तक होकर उनसे निवेदन करने लगे कि 'हे गुरुदेव! हे योगीन्द्र! आपके मन में जो शल्य है वह अकारण है। उसका निवारण मैं अभी कर देता हूँ। हे अन्तर्ध्यानी! जिस वसुधा को आप मेरी समझकर मन में शल्य लिये बैठे हैं, वह किसी की नही है। इस पृथ्वी को असंख्यात राजा- चक्रवर्ती भोग चुके हैं, वर्तमान में मैं भोग रहा हूँ लेकिन मुझसे भी ये एकदिन छूटने वाली है। मेरे बाद अनेकों राजा होंगे जो इसे भोगेंगे अतः इस वेश्यासदृश पृथ्वी के लिये आप अपने ध्यान में विघ्न ना लायें। हे महामुनिराज अपने मन से इस शल्य का निवारण शीघ्र कर परमात्म अवस्था को प्राप्त करें।' बस फिर क्या था, भरत के इन वचनों ने मुनीन्द्र के समस्त अन्तर्विकारों को निर्मूल कर दिया और अन्तर्मुहुर्त में उन्होंने केवलज्ञान को प्राप्त किया। बोलो भगवान बाहुबली स्वामी की जय!

www.gurukahanmuseum.org

भरत चक्रवर्ती के १६ स्वप्न

36"Wx60"H | Oil on Canvas

चक्रवर्ती सम्राट अपनी अयोध्या नगरी में अत्यंत सुखपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे थे। उनकी ९६ हजार रानियाँ, चौदह रत्न, षटखण्ड की सम्पदा - जगत को तो उनके सुख का आधार यही दिखाई देता था परन्तु उनके सुख का वास्तविक आधार ये जड-वैभव नही अपितु आत्मवैभव था। उसी आत्मवैभव में मग्न चक्रवर्ती भरत ने एक दिन अर्धरात्रि में विचित्र १६ स्वप्न देखे, जिनमें /-

- पहला - पंक्तिबद्ध २३ शेर एक के पीछे एक चलते हुए जा रहे हैं।
- दूसरा - अन्तिम शेर के पीछे मृगों का समूह है, जो उसके पीछे नही चल रहा है, अन्यत्र जा रहा है।
- तीसरा - एक बडा तालाब, जो बीच में से सूखा है परन्तु चारो कोनों में पानी है।
- चौथा - हाथी के सिर पर बन्दर बैठा है।
- पाँचवाँ - एक गाय कोमल घास को छोडकर सूखे पत्ते खा रही है।
- छठा - एक वृक्ष जिसके सारे पत्ते झड गये हैं और वह एकदम सूख गया है।
- सातवाँ - सम्पूर्ण पृथ्वी सूखे पत्तों से भरी है।
- आठवाँ - एक पागल सुन्दर वस्त्राभूषणों से युक्त है।
- नौवाँ - सोने की थाली में कुत्ता खाना खा रहा है।
- दसवाँ - उल्लु और कौवा, हंस को तंग कर रहे हैं, उसे कष्ट पहुँचा रहें हैं।
- ग्यारहवाँ - हाथी के रथ को घोडा लेकर जा रहा है।
- बारहवाँ - एक छोटा सा बैल अपने समूह को छोडकर घूरता हुआ भाग रहा है।
- तेरहवाँ - दो बैल एक साथ जंगल में घास चर रहे हैं।
- चौदहवाँ - अत्यंत उज्जवल रत्नों का समूह धूल से मलिन हो रहा है।
- पन्द्रहवाँ - धवल प्रकाश के चन्द्रमा के सामने वृक्ष का आवरण है।
- सोलहवाँ - नभमंडल में उदित सूर्य को मेघों के समूह ने घेरा हुआ है।

www.gurukahanmuseum.org

इस प्रकार विचित्र स्वप्नों को सम्राट भरत ने अर्धरात्रि में देखा, जिनका फल अभी ज्ञात नही और ना ही उसका कोई संकेत इन स्वप्नों में ज्ञात हुआ परन्तु इन स्वप्नों का फल निश्चित ही शुभ नही है ऐसा प्रातः बेला में विचार करते हुए सम्राट ने सोचा कि इन स्वप्नों का फल जानने कैलाश पर्वत जाना होगा, वहीं भगवान आदिनाथ की वाणी में इस ऊहापोह का समाधान मिल सकता है। अतः सम्राट अपने मंत्री-मित्रों के साथ कैलाश पर्वत पहुँचे।

भरत चक्रवर्ती के १६ स्वप्नों का फल

36"Wx60"H | Oil on Canvas

समवशरण में जिसके मन में जो शंका हो उसका समाधान तत्क्षण होता है, ऐसा आश्चर्य है अतः भरत के मन में भी सोलह स्वप्नों का फल जानने की जिज्ञासा थी एतदर्थ भगवान की वाणी में उनका फल आया जो कि इसप्रकार है/-

- पहले स्वप्न में तुमने २३ शेरों को क्रम से गमन करते हुए देखा जिसका अर्थ है कि आगे २३ तीर्थकरों का जन्म होगा और तभी तक धर्मकाल यथेष्ट रूप से प्रवर्तेगा, तत्पश्चात मिथ्यामतों का प्रभाव बढेगा।
- दूसरे स्वप्न में तुमने शेर के पीछे मृगों के समूह को देखा जिसका अर्थ है कि अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर के काल में मिथ्यामतों का प्रचार सर्वाधिक होगा, मतभेद की वृद्धि होगी।
- तीसरे स्वप्न में तुमने मध्यभाग से सूखा हुआ और किनारों में जल से पूर्ण तालाब देखा जिसका अर्थ है कि कलिकाल में जैनधर्म का उज्जवल रूप मध्यभाग में ना रहकर किनारे - किनारे में रहेगा।
- चौथे स्वप्न में तुमने बंदर को हाथी पर बैठे हुए देखा जिसका अर्थ है कि कलिकाल में क्षत्रिय कुल भ्रष्ट एवं विवेकहीन हो जायेगा और शासन तुच्छ जाति के लोगों के हाथों में होगा।
- पाँचवें स्वप्न में तुमने गाय को सूखे पत्ते खाते हुए देखा जिसका अर्थ है कि कलिकाल में सभी मनुष्य शिष्टवृत्ति को छोड हल्की अर्थात स्वच्छंद प्रवृत्ति को धारण करेंगे। मर्यादाहीन होकर प्रवर्तन करना चाहेंगे।
- छठवें स्वप्न में तुमने पत्रहीन वृक्ष को देखा जिसका अर्थ है कि कलिकाल में लोग लोक मर्यादा का भी त्याग करेंगे, उन्हें अपने शरीर की शोभा की भी चिंता नही रहेगी। चहुँ ओर दुष्काल प्रवर्तेगा।
- सातवें स्वप्न में तुमने पृथ्वी पर सूखे पत्तों को बिखरा देखा जिसका अर्थ है कि आगामी लोगों को भोग-उपभोग हेतु रसहीन पदार्थ ही मिलेंगे, सरस और पौष्टिक आहार ग्रहण नही कर सकेंगे। प्रकृति भी इसी प्रकार प्रवर्तन करेंगे।
- आठवे स्वप्न में तुमने एक पागल को वस्त्राभूषण युक्त देखा जिसका अर्थ है कि कलिकाल में लोग अपनी संतानों के शोभनीय नामों को छोडकर गंभीरहीन नाम रखना ज्यादा पसंद करेंगे।
- नौवें स्वप्न में तुमने सोने की थाली में कुत्ते को खाते हुए देखा जिसका अर्थ है कि ढोंगी लोगों की प्रतिष्ठा होगी, सज्जन लोगों का आदर उतना नही होगा। सत्य एवं स्पष्ट वक्ता की निंदा होगी।
- दसवें स्वप्न में तुमने उल्लु और कौएँ के द्वारा हंस को कष्ट पहुँचना देखा जिसका अर्थ है कि कलिकाल में राग-द्वेष से युक्त उल्लु-कौएँ की भाँति मनुष्य हंस की भाँति वीतरागी मुनिराजों की निंदा-अवहेलना करेंगे। उनके मार्ग में अनेक प्रकार के कष्ट उपस्थित करेंगे।
- ग्यारहवें स्वप्न में तुमने हाथी के रथ को घोडे के द्वारा चलाते हुए देखा जिसका अर्थ है कि कलिकाल में श्रेष्ठ जन भी उत्तम जैनधर्म को छोड अधर्म ही धारण करेंगे।
- बारहवें स्वप्न में तुमने समूह से छूटे घूरते हुए बैल को देखा जिसका अर्थ है कि कलिकाल में मनुष्य अलपायु में ही दीक्षा धारण करेंगे, दीर्घायु मनुष्यों में दीक्षा की भावना कम होगी और वे संघ में कम रहेंगे।
- तेरहवें स्वप्न में तुमने दो बैलों को एकसाथ जंगल में घास खाते देखा जिसका अर्थ है कि कलिकाल में तपस्वीजन गिरि-गुफाओं में एक-दो संख्या में ही देखने को मिलेंगे अर्थात तपस्वियों की संख्या बहुत कम रहेगा।
- चौदहवें स्वप्न में तुमने धूल मिश्रित रत्नराशि को देखा जिसका अर्थ है कि कलिकाल में तपस्वियों को बुद्धि, रस, बलादिक ऋद्धियों का उदय नही होगा।
- पंद्रहवें स्वप्न में तुमने आवरण युक्त चन्द्रमा को देखा जिसका अर्थ है कि कलिकाल में मुनिराजों को अवधि-मनःपर्यय ज्ञान नही होगा। और अन्तिम
- सोलहवें स्वप्न में तुमने मेघों में छिपे सूर्य को देखा जिसका अर्थ है कि कलिकाल में कोई भी केवलज्ञान धारण नही कर सकेगा और कालचक्र में अन्तिम काल मात्र २१ हजार वर्ष का होगा, जिसमें धर्म का नाम भी नही होगा, लोग म्लेच्छों की भाँति वर्तन करेंगे और उसके पूर्ण होने पर प्रलय आयेगी तत्पश्चात पुनः धर्म का प्रादुर्भाव होगा।

www.gurukahanimuseum.org

इसप्रकार स्वप्नों का फल जानकर भरत संतुष्ट हुए और पुनः अयोध्या की ओर प्रस्थान कर गये।

७२ जिनमंदिरों का निर्माण

42"Wx60"H | Oil on Canvas

सम्पूर्ण वसुधा के स्वामी, भरतक्षेत्र के चक्रवर्ती सम्राट भरत जितना अपने लौकिक क्षेत्र में उत्तम हैं उतना ही पारलौकिक क्षेत्र में भी। अपने भक्तिभाव और जिनेन्द्र देव के प्रति अगाढ श्रद्धा स्वरूप भरत ने कैलाश पर्वत पर ७२ जिनमन्दिरों के निर्माण कराने का निर्णय लिया। यह निर्णय सुनकर मानो सम्पूर्ण लोक में हर्ष छा गया हो, समस्त देश के राजा, मन्त्री, पुरोहित, समस्त परिजन एवं स्वजन भरत के इस निर्णय की हृदय से प्रशंसा करने लगे। यद्यपि यह कार्य भरत ने निज कल्याण हेतु किया परन्तु यह निर्णय लाखों भव्यों को मोक्षमार्ग में सहायक होने वाला है अतः सभी अत्यंत प्रसन्न हुए। साथ ही स्थान भी स्वयं में अति-उत्तम चुना गया है: कैलाश पर्वत अर्थात जहाँ साक्षात भगवान आदिनाथ का समवशरण विद्यमान है और जिनके सान्निध्य में सम्पूर्ण वसुधा एवं देवलोक तत्त्वज्ञान के अमृत रस का आस्वादन कर रहा है, ऐसे मोक्षस्थल कैलाश पर्वत पर भरत की आज्ञा से पंक्तिबद्ध ७२ जिनमन्दिरों का निर्माण कार्य प्रारंभ हुआ और अल्प अंतराल में ही वह कार्य सम्पूर्ण भी हुआ। इस मंगल कार्य की सम्पन्नता का समाचार सुनकर भरत अत्यंत प्रसन्न हुए और सम्पूर्ण परिवार के साथ जिनमन्दिरों के दर्शन करने उत्सुक हुए। अनेकानेक वाद्ययंत्रों के साथ, शुद्ध व श्वेत वस्त्र धारण कर भरत एवं उनकी समस्त रानियाँ और उनकी मातायें, पुत्र इत्यादि समस्त स्वजन कैलाश पर्वत की ओर प्रस्थान करते हुए जिनमन्दिर स्थल पर पहुँचे। वहाँ पहुँचकर भरत ने विधान आदि द्वारा समस्त जिनबिंबों की पूजा-अर्चना की एवं अकृत्रिम चैत्यालयों के समान सुशोभित रत्नमयी प्रतिमाओं के दर्शन किये। वे जिनमन्दिर गगन-मण्डल को स्पर्श करने वाले हैं, रत्नमयी हैं, उनका कण-कण मुक्तिमार्ग का द्योतक है, उनमें स्थित जिनबिंबों की महिमा व स्वरूप अवर्णनीय है, उनकी शोभा अचिंतनीय है। इसप्रकार भरत ने अपने समस्त परिवारजनों के साथ जिनेन्द्र देव की आराधना कर स्वयं को मुक्तिमार्ग में दृढ किया।

www.gurukahanmuseum.org

भरत द्वारा राज्यत्याग

36"Wx48"H | Oil on Canvas

षटखण्डाधिपति भरत इन्द्र के समान सम्पूर्ण पृथ्वी पर राज्य कर रहे थे और उनकी कीर्ति तीनों लोक में व्याप्त हो चुकी थी। उनकी आयु ८४ लाख पूर्व की थी, इतने दीर्घ समय तक वे सुख का भोग कर रहे थे तथापि वे वृद्ध नही हुए, उन्हें रोगादि नही हुए और ना ही कोई शारीरिक व्याधि ही हुई। क्योंकि चक्रवर्ती का पुण्य ही इतना उत्कृष्ट होता है कि वे कभी वृद्ध नही होंगे, सदा युवान ही रहेंगे। परन्तु भाग्य के समक्ष कौनसे नियम नहीं बदलते, एक दिन मुकुटबद्ध राजाओं से भरी राजसभा में भरत अपने राज-सिंहासन पर बैठे हुए थे कि तभी वहाँ जो मुखचित्रक था उसने सम्राट को दर्पण दिखाया कि सम्राट अपने मुख को देख ले कि उनका मुख बराबर हैं या नहीं? परन्तु मानो वो मुखचित्रक दर्पण नही वास्तविकता दिखा रहा हो। भरतेश ने मुख देखा और जाना कि शरीर थोडा झुक गया है और राज्यपालन की अब आवश्यक्ता नही ऐसा अवभासन किया। सूक्ष्मता से देखने पर भरत अपने मस्तक पर एक झुर्री दिखाई दी, जो मानो मुक्तिवधु की दूत बनकर उन्हें संसार से मुक्त अवस्था धारण करने का संदेश देने आयी थी। इस छोटे से ही निमित्त से भरतेश को अंतर में तीव्र वैराग्य जागा और वे कहने लगे कि 'हाय! धिक्कार है मेरी इस वृत्ति को, जो आयु पूर्ण होने के समय को बिना पहचाने अपना मनुष्य भव मैं अब तक इन भोगों के ही भोग में लगा रहा था। हे परमात्मा! मेरे ही आँखों के सामने मेरे समस्त भाई, मातायें, पुत्र, बहने एवं मेरे मित्रादिक दीक्षित हुए, मोक्ष गये परन्तु मुझे ये सद्बुद्धि क्यों नही आई? मैं क्यों अब तक इस जन्म-मरण की उलझन को दूर करने के यत्नमार्ग पर आरूढ नही हुआ। हे जिनेश्वर! मैं आज ही इस संसार को त्याग जिनदीक्षा धारण करूँगा।' सम्राट के ये विरक्तपूर्ण वचन सुनकर सभा में ऊहापोह होने लगी, मन्त्री-पुरोहित सभी निवेदन करने लगे कि महाराज! ये आप क्या कह रहे हैं, आप तो षटखण्डाधिपति हैं आपके सिवा इस पृथ्वी का भोग और कौन कर सकता है? यह समय उचित नहीः इत्यादि बातों से भरत को रोकने का प्रयत्न किया गया परन्तु अब भरत रुकेंगे नही। उन्होंने दृढ निश्चय जो कर लिया है अतः उन्होंने अपने सबसे बडे पुत्र अर्ककीर्ति को बुलाकर कहा कि 'हे पुत्र! तुम्हारे पिता ने उनके पिता की आज्ञानुसार इस राज्य का कार्यभार संभाला था अब तुम्हें भी उन्हीं को आदर्श मानकर यह राज्य संभालना है क्योंकि तुम्हारे पिता भी संसार-भोगों से विरक्त होकर अब मोक्षमार्ग की ओर प्रयाण करने जा रहे हैं।' पिता के ये वचन सुनकर अर्ककीर्ति की आँखों से अश्रुधारा बहने लगी, वह निवेदन करने लगा कि हे पिताजी! ऐसा ना कहें, हम सभी का इसप्रकार त्याग ना करें। पिता-पुत्र के संवाद को देखकर सारी सभा रोने लगी, परन्तु सभी के हृदय की संवेदन शीलता भी आज भरत को उनके मुक्तिप्रयाण में बाधक नही हो सकेगी। भरत के बहुत मनाने पर भी अर्ककीर्ति नही मान रहा था तब उसने तर्क दिया - 'पिताजी! बचपन से आजतक जो वस्तु आपको इष्ट थी, उसी से आपने हमारा पालन-पोषण किया तो आज जब आपको यह राज्य इष्ट नही तो ये मुझे किसप्रकार आप दे सकते हैं?' पुत्र के मन की निश्चलता को देख भरत अत्यंत गदगद हुए, तथापि भरत ने समय अत्यंत कम बचा है ऐसा जानकर अर्ककीर्ति का राज्याभिषेक कर उसे सम्राट के आसन पर बिठाया और सर्वप्रजा में अर्ककीर्ति को उनका महाराज घोषित किया और राजसभा से ही सीधा वन की ओर गमन किया। यह बात जब अंतःपुर में उनकी रानियों को ज्ञात हुई तो वहाँ का दृश्य तो अत्यंत दुखदायी हो गया, अनेकों रानियाँ मूर्छित होकर गिरने लगी, कोई विलाप में स्वामी का नाम स्मरण कर रही है और कोई उनके इस कार्य की अनुमोदना कर रही है। परन्तु अब भले ही जो हो, भरत ने अपने निर्णयानुसार पालकी में बैठकर मुक्तिमार्ग की ओर प्रयाण करने हेतु वन की ओर प्रस्थान किया। भरत का आत्मबल अचिंत्य है, वे आत्मगौरव से भरे हुए मोक्षार्थी भव्य पुरुष हैं। अंत समय में उन्होंने अपने योग्य कार्य को पहचानकर दीक्षा का निर्णय लिया, जो अन्य पुरुषों के लिये तो कदाचित असाध्य है। धन्य है भरत!

www.gurukahanmuseum.org

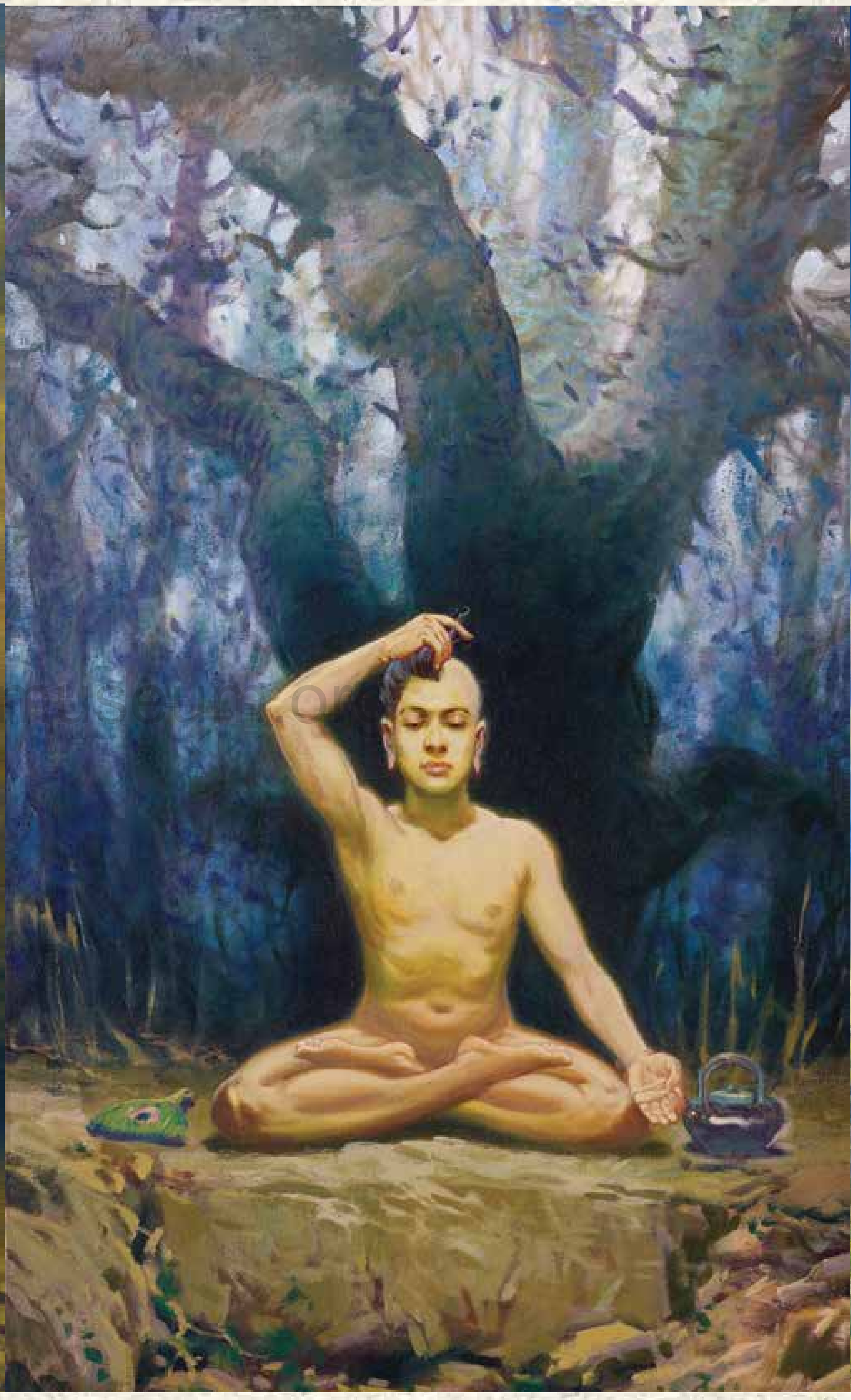

भगवान भरत का निर्वाण

42"Wx72"H | Oil on Canvas

अहो! जंगल में अपने आत्मस्वरूप में ध्यानस्थ मुनिराज! अहो! उनकी निस्वार्थ वृत्ति! क्षण-क्षण में आत्मानन्द के सागर में डुबकी लगाने वाले मुनिराज अन्तर्लीन होकर यदि अन्तर्मुहुर्त में ही केवलज्ञान धारण करलें, तो इसमें कोई आश्चर्य तो नही। ऐसे ही पद्मासन में स्थित मुनिराज भरत की अंतरंग परिणति है, बाह्य में केशलोंच और अंतरंग में कषायलोंच मानो चल रहा हो, सर्व क्रिया सम्पन्न होने पर मुनिराज भरत आत्मध्यान में लीन हो गये। मानो उन्हें वह निधि मिल गयी जिसका उन्हें वर्षों से इंतजार हो, ऐसा आनन्द और संतोष उनके मुख से झलक रहा था। भरत मुनिराज आत्मध्यान में ऐसे लीन हुए कि जैसे कोई वर्षों का प्यासा पानी के लिये तरसता है उसी प्रकार मानो भरत भी उस आत्मिक सुख के आनन्द रस के स्वाद हेतु जन्मों से तरसे हों और उनकी यह प्यास अन्तर्मुहुर्त में ही पूर्ण हो गयी अर्थात मात्र अन्तर्मुहुर्त में मुनिराज भरत ने तीन कषाय चौकडी का अभाव कर सप्तम गुणस्थान की अवस्था और साथ ही त्रिकरण परिणामों द्वारा संज्वलन कषाय का भी सर्वथा क्षय कर क्षायिक सुख की अवस्था और तदुपरांत शेष तीन घातिया कर्मों का भी नाश करके तेरहवें गुणस्थानवर्ती अनन्त चतुष्टयवंत अर्हन्त अवस्था धारण की। यह कोई आश्चर्य नही! भरत तो बाल्यावस्था से ही तीव्रपुरुषार्थी हैं, चरमशरीरी हैं, असाधारण पुण्यवान हैं और अल्पकाल में ही भगवान भरत ने तेरहवें गुणस्थान के अंत में शेष रहीं समस्त कर्म-प्रकृतियों का भी क्षय कर सिद्धावस्था धारण की और लोकाग्र में जा विराजमान हो गये। नौ केवल लब्धियों के धारी, समस्त कर्ममल से रहित, अशरीरी सिद्धावस्था को धारण करने वाले भगवान भरत का अपरिमित पुरुषार्थ धन्य है। धन्य है उनकी साधना! और उनका आत्म समर्पण। परमपद में स्थित परमात्म स्वरूप निजात्मा को ध्याने वाले भगवान भरत की जय हो!

भरत का भारत

48"Wx60"H | Oil on Canvas

यूँ तो इस धरा पर अनेकों शासक जन्में व अनेकों विदेशों से भी आये, जिसमें किन्हीं ने अपने बल से, किन्हीं ने अपने छल से तो किसी ने बडी ही बुद्धिमत्ता से इस देश पर साम्राज्य किया। प्राचीनकाल से इस देश की संस्कृति ही इसकी वास्तविक सम्पदा रही है, इसका आचार-विचार ही विश्वभर में इसकी सौन्दर्यता का परिचायक है। जब हम शोधार्थी बनकर इतिहास के झरोखे से इस भारत देश के भीतर झाँकतें हैं तो सबसे उन्नत एक स्वर्णिम महल हमें दिखाई देता है, जिसकी हर दीवार पर बस एक ही नाम है - प्रथम जैन तीर्थंकर आदिनाथ के पुत्र सम्राट भरत चक्रवर्ती। भरत - जो आदिनाथ के पुत्र थे, जिनके भाई बाहुबली जो कामदेव अर्थात संसार के सबसे सुन्दर पुरुष थे, जिनके १०० भाई और विश्व सुन्दरी एवं अक्षर-अंक विद्या की धनी दो बहनें - ब्राह्मी, सुन्दरी थी। ऐसे भाग्यशाली भरत को एक दिन उनकी आयुधशाला में सुदर्शन चक्ररत्न की प्राप्ति हुई अर्थात सम्पूर्ण षटखण्ड जीतने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। चक्ररत्न, जिसके प्रभाव और सामर्थ्य के आगे धरती का कोई बलशाली टिक नही सकता, जिसके प्रभाव से हजारों देवगण भरत की सेवा में निहित हो गये, जिसके बल से भरत ने आर्यखण्ड सहित पाँच म्लेच्छ खण्डों पर इस कलिकाल में सर्वप्रथम विजय हासिल की, ऐसा वह सुदर्शन चक्र दिव्य आभा से युक्त होता है। परन्तु भरत अन्य राजाओं की मानसिकता वाले नही थे, उन्होंने शासन करने हेतु दिग्विजय यात्रा कर भरतक्षेत्र को अपने वश में नही किया, वे तो अखण्ड भारत के स्वप्न-दृष्टा थे, उन्होंने तो सम्पूर्ण वसुधा पर एक शासन का विचार किया। भरत की दिग्विजय किसी को हानि पहुँचाने वाली नही अपितु 'वसुधैव कुटुंबकम्' की सद्भावना से युक्त विकासपूर्ण थी। उनके निर्देशन में सर्वप्रथम एक नीति, एक न्यायप्रणाली, एक आदर्श समाज की स्थापना की गयी। भरत के स्वप्नानुसार उन्होंने सभी को जैन सिद्धांतों और उसके आचार-विचार से जोडा, जिसके कारण सम्पूर्ण प्रजा सात्विक वृत्ति को धारण करने वाली हुई। भरत शासक नही, आराधक थे, वे स्वयं भी पूर्ण सुख के खोजी थे और वे दूसरों को भी उसी चीज से जोडना चाहते थे जिससे सभी जन भी उन्हीं की भाँति संतोष और निःस्वार्थ वृत्ति वाले हों। साठ हजार वर्ष के समयचक्र में भरत ने सम्पूर्ण भरत क्षेत्र को अपने आधीन किया और उसे अखण्ड साम्राज्य में स्थापित किया। शायद ही उन जैसा शासक इस वसुधा पर अन्य हुआ हो। उनके इसी प्रभाव से सम्पूर्ण वसुधा उनके चरणों में नत-मस्तक हो गयी। ऐसे भरत का इस वसुधा पर अनन्त उपकार है। काल बीता, समय बीता, करोडों वर्षों बाद भी जो शासक हुए वे भरत के उपकार को विस्मरण नही कर सके, जिसका एक उदाहरण है सम्राट खारवेल के हाथीम्गुफा का वह शिलालेख जिसमें इस देश का नाम आदिनाथ के पुत्र भरत के नाम पर भारत कहा गया। जब अधिक शोध की गयी तो पाया गया कि वेद-पुराण तो चीख-चीख कर भरत की यशोगाथा का वर्णन कर रही है।

www.gurukahanmuseum.org

चित्रकार परिचय

भारत के प्रसिद्ध कलाकार, श्री विजय आचरेकर जी का जन्म सन् १९६७ में महाराष्ट्र के मुम्बई शहर में हुआ। सन् १९८८ में कला एवं रचना प्रशिक्षण का अध्ययन आपने ऊषा देशमुख स्वर्ण पदक के साथ प्रथम श्रेणी में सम्पन्न किया। समाज में अपनी चित्र कला से सबको मुग्ध करने वाले श्री विजय आचरेकर जी अनेकानेक उपाधियों और सम्मान पदकों से समय-समय पर सम्मानित हुए हैं।

कुछ महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ -

विजय आचरेकर जी कई सारे 'ग्रुप शोज़' और 'सोलो शोज़' का हिस्सा रह चुके हैं। जिनमें सन् २००२ में हुई 'द रिसल्ट आर्ट गैलरी, एवं सिटि कैफ़ गैलरी, यु.एस.ए.', सन् २००३ में 'राइट लाईन्स आर्ट गैलरी, बैंगलोर', सन् २००६ में 'आर्टलैण्ड - कलर्स २००६' एवं 'जहांगीर आर्ट गैलरी', सन् २००८ में 'इण्डियन ओइल, मुम्बई' सन् २०१२ में 'द आर्ट सेन्ट्रिक्स स्पेस, दिल्ली' तथा 'सिटि कैफै गैलरी', २०१४ 'प्रभोधानकर ठाकरे आर्ट गैलरी, मुम्बई' आदि अग्रणीय हैं।

कुछ पुरस्कार एवं सम्मान -

श्री विजय आचरेकर जी सरकार एवं निजी संस्थाओं द्वारा अनेकानेक पुरस्कारों से भी सम्मानित हुए हैं जिनमें सन् १९८५-१९८६ में एल.अस. रहेजा स्कूल ओफ़ आर्ट, मुम्बई द्वारा "Annual Exhibition Award for Landscape'; सन् १९८७-१९८८ में "Annual Exhibition Award for Portrait'; सन् 1990, 1991, 1994, 1995 में "Art Society of India Award'; आदि प्रमुख हैं।

www.gurukahanmuseum.org

चित्रकार की अनुभूति -

भरत चक्रवर्ती के जीवन पर आधारित 'भरतेश वैभव' की इस कलात्मक रचना से मैं स्वयं अभिभूत हूँ, भरत मात्र कथानायक नहीं अपितु स्वर्णिम इतिहास के चरित्रनायक भी।

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई लगभग अनेक वर्षों से अथक श्रम करते हुए पूरे भारत तथा विश्वभर में भी **जिनशासन के तत्त्व-सिद्धांत और विचारों का भरपूर प्रचार** कर रहा है। जिसके आधार अध्यात्म युगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी तथा उनकी प्राणी मात्र के कल्याण की भावना ही है। इसी कडी में गुरुदेवश्री की साधनास्थली **सुवर्णपुरी सोनगढ में सन् २०१८ में** भारत के अनेक गणमान्य लोगों और हजारों मुमुक्षु साधर्मियों की उपस्थिति में गुरु कहान कला संग्रहालय का भव्य उद्घाटन हुआ। जिसमें तीर्थंकर परमात्मा की वाणी में आये अनेक तत्त्व एवं सिद्धांतों, पू. गुरुदेवश्री तथा पू. बहिनश्री के जीवनदर्शन एवं वचनामृतों पर आधारित कला प्रदर्शनी का संयोजन किया जा रहा है। विगत वर्षों में विश्वभर केअनेकों साधर्मियों, पर्यटकों तथा विद्वानों द्वारा कला संग्रहालय की सराहना की गयी है एवं इस प्रदर्शित कला को जीवनोपयोगी सिद्ध किया गया है। यदि आप सब भी लाखों मुमुक्षु साधर्मियों की तरह अपने कल्याण का मार्ग प्रशस्त करना चाहते हैं, तो एक बार अवश्य पधारेंः

गुरु कहान कला संग्रहालय, सोनगढ.

શ્રી દિગંબર જિનબિંબ પંચકલ્યાણક પ્રતિષ્ઠા મહોત્સવ

સોનગઢ

Shree Aadinath Digambar Jinbimb Panchkalyanak
Pratishtha Mahotsav, Songadh

www.gurukahanmuseum.org

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust
302, Krishna Kunj, V. L. Mehta Marg, Vile Parle (West), Mumbai - 400 056. INDIA.
Tel. No.: +91 22 2613 0820 / 2610 4912
info@vitragvani.com | www.vitragvani.com | vitragvanee | /c/vitragvanii

GURU KAHAN ART MUSEUM

Guru Kahan Art Museum, Shree Digambar Jain Swadhyay Mandir Sankul,
Songadh, Tah. Sihor, 364250. Gujarat, India.

info@gurukahanmuseum.org | gurukahanmuseum.org | +918209571103
gurukahanmuseum | Vitragvani_GKAMS | /c/gurukahanartmuseum

Guru Kahan
Art Museum App

9 781234 567897